गरजती गंगा

डा० सत्यनारायण

प्रकाशक
हिन्दी विश्व-भारती कार्यालय
चारबाग़ : : लखनऊ

मूल्य २ रुपया

मुद्रक
पं० भृगुराज भार्गव
भार्गव-प्रिंटिंग-वर्क्स, लखनऊ

उन्हें

जो मृत्यु का पग पग पर उपहास कर
उस पर विजय प्राप्त करने चलते हैं।

"पतन अभ्युदय बंधुर पंथा,
युग युग धावित यात्री।
हे चिर सारथी तव रथचक्रे,
मुखरित पथ दिन रात्री॥"

—रवीन्द्रनाथ

चित्र

'चल् चल्! चल् चल्!'

वे चलती ही रहती हैं। नृत्य करती। गुनगुनाती। उनके जीवन की ही यह रागिणी है। शब्दहीन सुर में।

हमारी गंगा वास्तव में ही किसी अलौकिक संगीत का साकार रूप हैं। लहरें उठती और पड़ती हैं। गंगा जाती हैं चलतीं। आगे की ही ओर। अंतहीन दूर।

उनका जो कुछ भी अपना है उसे वे बिखेरती जाती हैं। हम उन्हें बटोरने जाते हैं। उनका महास्रोत हमें भी खींच ले चलता है। अपने साथ। हमारे जीवन में भी बजने लगता है—'चल् चल्! चल् चल्!'

यह उपन्यास नहीं। कहानी नहीं। न है कल्पना। यह है एक चलित चित्र। गंगा की धारा की पटभूमि पर अंकित।

लेखक के लिए यह दृश्य एक विराट् चित्र है। इस चित्र का ही परिचय देने की चेष्टा की गई है 'गरजती गंगा' में। इसके पात्र व इसकी घटनाओं पर कल्पना का रंग अवश्य है, पर वे सर्वथा कल्पित नहीं हैं।

सूची

विषय				पृष्ठ
गंगा-किनारे	...	...	...	१
माझी	...	...	...	७
बाबा	...	...	...	११
बागी	...	...	...	१५
यात्रा	...	...	...	२२
बंधन	...	...	...	३१
कलंकिनी	...	...	...	३६
योगिनी माँ	...	...	...	४६
गान	...	...	...	६१
कालकोठरी	...	...	...	७०
राग-विराग	...	...	...	७८
आँधी में	...	...	...	८४
प्रेरणा	...	...	...	८६
नारी	...	...	...	६६
हत्यारा	...	...	...	१०३
भेंट	...	...	...	१०८
संतान	...	...	...	११४
पड़ाव	...	...	...	१२१

विषय				पृष्ठ
आश्रय	...	...	...	१२६
बाढ़	...	...	...	१४०
आतंक	...	...	...	१५२
उबारा	...	...	...	१६२
नई धारा	...	...	...	१६८
प्रतिशोध	...	...	...	१७५
विसर्जन	...	...	...	१७६
जय माँ गंगे	...	...	...	१८३

गंगा किनारे

'आओ ! आओ !'

एक ओर गंगा की और दूसरी ओर उसकी आवाज़—

गंगा आलाप ले-लेकर बुला रही है।

उनके स्रोत पर अज्ञात उँगलियाँ दौड़-दौड़कर अद्‌भुत रागिनियों के स्वर निकालती हैं। उन्हीं रागिनियों के साथ मालूम नहीं कितने तरह के वाद्ययंत्रों की संगति चलती है।

बीच-बीच में उच्च स्वर से 'हहास' पुकारता है—'आओ...आ... ओ...।'

गेरुए वस्त्र धारण किए, एक कांतिमय पुरुष की दृष्टि उसी ओर है। उसकी मुद्रा से प्रतीत होता है मानो वह गंगा का संगीत पूरा-पूरा नहीं समझ पाता पर उनकी पुकार उसे अवश्य अपनी ओर खींचे लिए ी है। वह उसी दिशा में आगे बढ़ना चाहता है।

'आओ ! आओ !' कह कर एक स्त्री उसका हाथ पीछे से खींच रही है।

चलते समय उसके पाँवों के कड़ों से निकला 'भिन्‌भिन्‌' सुनाई देता है। उस शब्द द्वारा भी उसके हृदय में झंकृत होते रहनेवाले तारों की ध्वनि व्यक्त हो जाती है। वह ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती है, उसके पाँव बहुत भारी होते जा रहे हैं।

पुरुष, बिना उसकी ओर देखे ही, उसे बार-बार झटक देता है। स्त्री गिरते-गिरते रुक जाती है, मुश्किल से अपने को सम्हालती है। तब फिर, उस पुरुष को पकड़ने के लिए उसके हाथ आगे बढ़ते हैं। उस समय चूड़ियों की आवाज़ में सुनाई देता है—

'न छोड़ूँगी ! न छोड़ूँगी !'

किनारे पर पहुँचकर वे दोनों खड़े हो गए। अंधकार धीरे-धीरे प्रकाश में विलीन होता जा रहा है।

उसका घूँघट भी खिसक पड़ा। झाँकी लगाने लगा उसका गोरा रँग ! माथे का एक मात्र अलंकार है सिंदूर। गाँव में ही पनपते रहने के कारण उसके चेहरे पर किसी क़िस्म की भी कृत्रिमता की निशानी नहीं है। अपने प्रकृतिदत्त सौंदर्य के प्रति वह लापरवाह है; शायद उसका ज्ञान भी उसे नहीं है। उसकी दृष्टि में है छोटे बच्चों-सा कौतूहल और आग्रह !

उस पुरुष का हाथ पकड़ रखने की चेष्टा में उसका आँचल भी खिसक गया। अब उसके अंग से चिपकी रह गई है सिर्फ़ उसकी चुस्त झुलिया। उसी पर, पीछे की ओर, कमर तक झूल रही हैं उसके लंबे बालों की लटें।

जहाँ तक दृष्टि जाती है, गंगा-तट अब भी निर्जन है। उसे देखनेवाले, यदि कोई हैं, तो उस पार के बादल। वहाँ पर, बादलों ने पहाड़ की उजली चोटी से झरकर आनेवाली एक नदी बना रखी है। उसमें

दो नावें बरबस बहती, डूबती-उतराती चली जा रही हैं। एक मुहूर्त्त के लिए दोनों एक हो गईं पर अगले क्षण ही फिर दोनों दो दिशाओं में जाकर मालूम नहीं कहाँ विलीन हो गईं। पहाड़ भी गलकर नदी में मिल गया। दिखाई देने लगा वहाँ भी, सिर्फ़ पानी ही पानी। एक अकेला पक्षी उसी दिशा में उड़ता हुआ चिहक-चिहककर मालूम नहीं किसे ढूँढ़ता जा रहा है।

वह स्त्री काँप-सी गई। एक हाथ से उसने अपना आँचल सम्हाल कर फिर से अपने कंधे के पीछे फेंक लिया। बोलने की उसने चेष्टा की, पर गला अब भी रुँधा हुआ है।

'छोड़ मुझे!' पुरुष ने कर्कश स्वर में कहा।

'नहीं छोड़ती! नहीं छोड़ती!' बिना बोले ही वह आँखों से कह रही है। उसके चेहरे की समस्त कोमल रेखाएँ कातर बनकर अपना वही आग्रह दिखा रही हैं।

'मुझे जाने दे!' इस बार स्त्री के चेहरे पर पुरुष की दृष्टि पड़ी। उस मुखड़े पर दीनता की झलक देखकर निष्ठुरता में भी दया का संचार हो आया। पुरुष ने हाथ छुड़ाने की चेष्टा छोड़ दी। स्त्री के भी हाथ शिथिल पड़े। हृदय का भार उसे बड़ी देर से नीचे की ओर खींचे लिए जा रहा है।

पुरुष ने उसे पकड़ने के लिए हाथ आगे बढ़ाया। मालूम पड़ा, जैसे वह आलिंगन करके उसे ऊपर उठा लेगा, पर ठीक उस स्पर्श के साथ, वह बिजली लग जाने की भाँति चमक उठा। उसने स्त्री को अपने से दूर ढकेल दिया।

गिरते-गिरते स्त्री ने उसके पाँव पकड़ लिए। वह लौटने लगी। अतिशय भय के कारण वह दाँतों पर दाँत बिठा रखना चाहती है।

'छोड़, नहीं तो अभी गंगा में ढकेल दूँगा!' पुरुष को स्त्री अपने पैरों पर नागिन सी भयानक दीख रही है। वह एक झटके से पीछे हट गया।

वह झाऊ की झाड़ियों की ओर बढ़ा। कहीं वह फिर पीछे आ तो नहीं रही है ? यह देखने के लिए थोड़ी दूर जा उसने पीछे फिरकर देखा। इस बार वह पत्थर की मूर्त्ति-सी वहीं भूमि पर हाथ टेके, हृदय थामे उसकी ओर देख रही है। उसकी आँखें अब भी कह रही हैं—'मत जाओ।'

धीरे धीरे वे आँखें छोटी पड़ने लगीं। साथ ही मलिन भी। उनका ज़ोर भी कम पड़ने लगा। देखते-देखते वे धुँधली बन गईं···फिर एक झाऊ ने उन्हें अपनी ओट में कर लिया।

दीपा बड़ी देर तक गंगातट पर भटकती रही। उसने एक सिरे से दूसरे सिरे तक झाऊ की झाड़ियाँ छान डालीं, पर वह मिला नहीं। इस बीच में धूप कड़ाके की निकल आई। प्यास से उसका गला सूखने लगा है।

गंगा सामने ही हैं पर उनका जल तक उसने स्पर्श नहीं किया—उनकी ओर देखा तक नहीं। वे भी उसकी दृष्टि में खूँख़ार बन गई हैं।

बार बार लौटकर वह उसी स्थान पर आती है जहाँ उसके स्वामी ने अपने पाँव छुड़ा लिए थे। वहाँ की मिट्टी में बालू का अंश अधिक है। दीपा उसमें अपने स्वामी के चरण-चिह्न ढूँढ़ती है।

बेकार ! हवा ने बालू के कणों से उस स्थान के सब चिह्न मिटा दिए हैं। अब वह ज़मीन भी तपने लगी है। शायद उसी की प्यास मिटाने के लिए गंगा स्वयं आगे बढ़ती आ रही हैं।

प्रवाह किनारा काटता जा रहा है। चट्टान जैसे गीली मिट्टी के अराड़ नदी में पड़ते जा रहे हैं। एक बहुत पुराना वट-वृक्ष, जो अनेक बड़े-बड़े तूफ़ानों का सामना करता आया, जिसने कभी किसी के सामने सिर नहीं झुकाया, वह इस समय गंगाजी को साष्टांग नमस्कार करने लगा है। उसके पंजे शिथिल पड़ गए हैं, फिर भी, उनके ही सहारे वह धरती पर टिके रहने के लिए संघर्ष करता जा रहा है। उसे खींच ले जाने की ताक़त प्रवाह में नहीं है।

'कि...धर ? कि...धर ?' कहता पक्षियों का एक झुंड पश्चिम की ओर से उड़ता आया है। गिरे हुए वटवृक्ष की परिक्रमा कर वे पक्षी मँडराने लगे हैं। तूफ़ान के समय शायद वे उसी पर आश्रय लिया करते थे। जिन डालियों पर उनके घोंसले थे, वे अब डूबने की हालत में हैं।

दीपा अब भी स्वामी के पद-चिह्न ढूँढ़ रही है। एक स्थान पर पहुँच कर वह रुक गई। उसे वास्तव में ही एक चिह्न मिला—उसके अपने ही हाथों की चूड़ियाँ—उसका सौभाग्य-चिह्न। अनुरोध-अवहेलना के संघर्ष में उनके कई टुकड़े हो गए हैं। उनमें से ही कुछ वहाँ पर पड़े हैं। उन्हें हाथ में लेकर वह बार बार अपनी छाती से लगाने लगी। उनकी छुन ध्वनि उसके हृदय में बजने लगी। उस झंकार की स्मृति वह भूल ही गई थी। इस समय याद भी आई तो दूर अतीत के संगीत सी ! स्मृति में केवल अवसाद जाग्रत करने के लिए।

बादलों को भेद कर सूर्य ने एक झाँकी लगाई। क्षितिज के नीचे उतर जाने के पहले यह उसकी आख़िरी झाँकी है। उस प्रकाश में प्रत्येक वस्तु कान्तिमय बनकर सुन्दर हो गई है।

दीपा भी मूर्ति सी दिखाई देने लगी। उसके रुपहले गहनों में हीरों की चमक आ गई है। चेहरा तपते सोने सा है। मिट्टी में कई बार लोटते रहने के कारण साड़ी गहरे गेरुए रंग की बन गई है। वह रंग गंगा के रंग से मिलता जुलता है।

वह इस समय रंग-मंच पर खड़ी सी दिखाई देने लगी है। प्रकृति के साज का वही केन्द्र बन गई जान पड़ती है। चमचम करता हुआ सुनहला प्रकाश एक मुहूर्त के लिए उसी के चेहरे से टकराकर इस किनारे पर बिखर गया है। उस पार से कई पक्षी उसी की ओर उड़ते आ रहे हैं।

उन्हें देखकर दीपा को बहुत बचपन में देखा हुआ एक दृश्य याद आने लगा। वह अपनी माँ के साथ गंगा नहाने जा रही थी। इसी भाँति उड़ते हुए बहुत से पक्षी आकर एक वृक्ष पर बैठ गए थे। एक शिकारी ने

ऊपर की ओर देखकर गुलेल का निशाना लगाया। एक पक्षी बड़े तीव्र स्वर में 'चें-एँ-एँ-एँ' करता हुआ वेदना से पंख फटफटाते नीचे गंगा में जा गिरा। धारा उसे बहा ले चली।

ताज़ी मिट्टी कट-कट कर गंगा में गिर रही है। क्षण भर में ही वह पानी में घुल-मिल जाती है। लहरें उसे निगल कर फिर नई मिट्टी झाड़ने लग जाती हैं। कई हिलोरें उमड़-उमड़ कर दीपा को छूना चाहती हैं।

किनारे से थोड़ी दूर पर, प्रवाह में बहुत-सी लकड़ियाँ उतराती जा रही हैं। उस स्थान पर गंगा का रङ्ग काला दीखता है। वहीं एक घड़ियाल गिरह लगाता हुआ ऊपर आया। दीपा से थोड़ी दूरी पर उसने दीर्घ निःश्वास लिया, फिर गिरह लगाई, और तब डुबकी लगाकर विलीन हो गया।

दीपा इन सबके प्रति अन्यमनस्क है। वह एकटक झाऊ की झाड़ियों की ओर देख रही है। उसे वहाँ अभी-अभी एक छाया दिखाई पड़ी है पर सबेरे से मालूम नहीं कितनी बार वह धोखा खा चुकी है। इस बार वह उसकी हलचल परख लेना चाहती है।

इसी समय, जहाँ वह खड़ी थी, वह अड़ार भी ज़मीन से अलग होने लगा। दरार काली नागिन की शक्ल की है। उसका मुँह चौड़ा होने लगा है। दीपा के पाँवों के नीचे की भी थोड़ी मिट्टी ख़ाली हुई। उसके दोनों हाथ ऊपर उठ गए, मानो वह अब झाऊ के बीच की छाया को बुलाने लगी!

पर वह स्वयं गंगा की ओर खिंचती गई—जैसे किसी ने उसे झटका दिया और एक क्षणमात्र वह दिखाई पड़ी!

तब लहरों ने उसे नीचे दबोच दिया!

माझी

पतवार से उढ़का भोला माझी हुक्का गुड़गुड़ाते गुड़गुड़ाते अचानक रुक गया।

इस्पात-सी सुदृढ़ हड्डियाँ और सुतली जैसी मोटी नसें उसके शरीर की गठन की विशेषतायें हैं। बंगाली झोपड़ों के पुराने छप्पर की शक्ल के उसके केश हैं। मूछें करारी हैं। आँखों से थोड़ा धुँधला दीखता है। इस समय पश्चिम की ओर आँखें गड़ा गड़ा कर, ज्ञात नहीं, क्या देखने की चेष्टा कर रहा है।

'सोनियाँ!' उसने पुकारा—'देख! देख!'

'क्या है बाबा?' कहती हुई नाव के भीतर से बारह-चौदह साल की एक लड़की निकली। उसकी गति यौवन की ओर प्रतीत होती है। रङ्ग गङ्गाजी जैसा मटियाला होने पर भी चेहरे की बनावट बहुत सुन्दर है। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें ऊँची उड़ान लेती दिखाई देती हैं।

किशोरावस्था के लक्षण गालों पर आ गए हैं। अब वे फाँक किए खरबूज़े जैसे दीखते हैं। उसने सिर हिलाते हुए कहा—

'कुछ भी तो नहीं।'

'कुछ भी दिखाई नहीं देता ?'

'नहीं तो !'

'वहाँ कौन......?'

'कोई तो नहीं।'

'तुम्हारी आँखें मुझसे भी कमज़ोर हैं। तुम्हारी उम्र में मैं गङ्गा पार के आदमी को पहचान लेता था। कभी भूल नहीं की। अभी भी मेरी आँखें तेज़ हैं। उन्हीं आँखों से मैंने अभी देखा है। तुमने आवाज़ भी नहीं सुनी ? मुझे वहाँ कछार पर साक्षात् देवी खड़ी दिखाई पड़ी थीं। पर तुरंत ही वे कहाँ लोप हो गईं ? गङ्गा में तो उन्होंने डुबकी नहीं लगा ली ?'

'तुमने उन्हें देखा है ?'

'ज़रूर देखा है। यह हहास भी अजीब है। उस बार भी ऐसी ही हहास सुनाई पड़ी थी। वह—दूर पर—जहाँ आजकल धारा है, वहीं हमारा मकान था। देवी के वहाँ आते ही—धमा-धम्म् ! एक घर गिरा ! मेरे देखते देखते दूसरा भी धमाक ! उसकी एक कड़ी तक हम नहीं बचा सके। मैंने आँखें मूँद लीं। देवी आईं—विकराल रूप धारण कर हँसतीं और नाचतीं ! पर यह तो बड़ी शांत......'

'उस भयानक बाढ़ के साल की बातें कह रहे हो बाबा ?'

'मैंने उन्हें अभी अभी देखा ज़रूर है।' आँखें मूँदकर बूढ़ा थोड़ी देर चुप बैठा रहा, मालूम पड़ा जैसे कुछ याद कर रहा हो, फिर उसकी आँखें खुलीं। वह कहने लगा—

'बाबू कुँवरसिंह—तेगवा बहादुर कुँवरसिंह ने यहीं से गङ्गा पार की थी। मेरे बाबा कहा करते थे,—'उस जगह'—बूढ़े ने उँगली से दिखाते

हुए कहा—'वह, वहाँ पर उन्होंने आज़ादी का झंडा खड़ा किया था। आजकल वहीं पर देवी का मन्दिर है। देवी हमेशा वहीं से निकला करती हैं। जब उनके निकलने का समय होता है तभी ऐसी हहास सुनाई देती है।'

पश्चिम में एक बार बिजली चमकी—तुरंत ही एक कड़ाका भी सुनाई पड़ा। बूढ़े ने कहा—

'यह समय उनके...'

भय और अनिष्ट की आशंका से वह बीच में ही रुक गया।

पानी में दूर से ही छप् छप् सुनाई दे जाता है। उसके काले बाल भी दिखलाई पड़ते हैं। धारा उसे चक्र की तरह नचाती खींचे लिए आ रही है। लहरें उसे ऊपर की ओर उछालती हैं, जैसे माँ अपने बच्चे को उछालती हो।

गंगा तट पर रहने के कारण गंगा मैया की गोद में खेलना वह जानती है। उसके हाथ-पाँव अनायास ही काम करने लगे हैं। पहले कुछ मिनट तक पानी में उसे अच्छा लगा। पर कुछ दूर निकल जाने पर किनारा दूर पड़ता दिखाई देने लगा। इस दूरी ने ही उसे अपनी परिस्थिति का ज्ञान करा दिया है।

वह किनारा पकड़ने के लिए हाथ पैर मारने लगी पर उत्तरोत्तर दूर ही खिंचती गई।

सोनियाँ की भी दृष्टि उस पर पड़ी। वह उसकी नाव की ओर बहती आ रही है। पर एक धमाका सुनाई दिया। बहुत बड़ा अड़ार धँस कर गंगा में आ गिरा। उसकी मिट्टी और बुलबुलों में वह बहती हुई 'बिंदी' कुछ देर के लिए छिप गई। भयभीत होकर सोनियाँ अपने पिता के पास जा पहुँची।

वह फिर दिखाई पड़ी पर जिधर से वह आ रही है उधर के धमाके बंद नहीं हुए हैं। किनारों के कटने से मिट्टी की जो चट्टानें गंगा में गिरती

हैं उनसे पानी में उथल-पुथल मच जाया करती है। उस उथल-पुथल की लहरें ही उसके किनारे लगने में बाधा पहुँचा रही हैं।

नाव के नज़दीक पहुँचते-पहुँचते वह चेतना-शून्य सी होती जा रही है पर उसका अंतःकरण अब भी जाग्रत है। वहाँ एक अद्भुत शांति तथा संतोष है। मन ही मन उसे प्रतीत होता है मानों वह जिसे इतने दिनों से ढूंढ रही थी, वह मिल गई है। पर उस तृप्ति के मुहूर्त्त में ही वह अचेत हो गई।

'अरे...' भोला माझी उसका चेहरा देखते ही चिल्ला उठा—'तुझे यह क्या सूझा ?'

अगले क्षण—वह पानी में कूद पड़ा। उसकी गर्दन पकड़कर नाव से बँधी रस्सी उसने थाम ली। सहारे से किनारे तक उसे खींच लाया। थाह भर पानी में आ जाने पर उसे खड़ा करना चाहा, पर स्वयं खड़े होने की शक्ति उसमें नहीं रह गई है। उसकी मदद के लिए सोनियाँ भी पहुँच गई। वही हाथ पकड़कर उसे सूखी ज़मीन पर खींच ले आई।

वह अचेत है। उसके चेहरे पर बालू के कण चमचम कर रहे हैं। गंगा-मैया ने उसका मुखड़ा भली भाँति धोकर मानों वे बिंदियाँ लगा दी हैं।

भोला माझी ने उसके नाक के पास हाथ रखकर देखा। साँस चल रही है पर चेहरे के साथ साथ सारा शरीर भी फूला फूला सा लग रहा है। माझी ने अंदाज़ लगाया—'शायद पानी बहुत पी गई है। पर गंगा जल ही तो है, बहुत ज़्यादा नुक़सान नहीं कर सकेगा। बाबा इसे बचा लेंगे। इसे मठिया पर पहुँचा देना चाहिए।'

उसे गोद में उठाकर उसने नाव पर रखा। बड़ी सावधानी से। ठीक वैसे ही जैसे सोनियाँ को बहुत छुटपन में उसकी माँ के हाथ से गोद में लिया करता था और उसके सो जाने पर खटोले पर लिटा दिया करता था।

बाबा

उन्हें लोग बाबा कहते हैं। वे असल में हैं भी पूरे बाबा। उनके केश रुई जैसे सफ़ेद हो गए हैं। दाढ़ी छाती तक लटकती है। मुँह खोलते हैं तो सिर्फ़ दो दाँत चमक जाते हैं। हँसी में ठीक छोटे बच्चों की सी सरलता है।

पहनते वे घुटनों के नीचे तक लटकता अलफा हैं। गाढ़े गँगौट में रँगे होने के कारण वह दूर से जलती आग की तरह दीखता है। क़द लंबा रहने के कारण वह बाबा के शरीर पर ख़ूब खिलता है।

किसी तरह का भी दुनियावी भाव छिपा न रखने के कारण उनका गोरा चेहरा चमकता रहता है। उनकी आँखें ऊपर की ही ओर देखती हैं। वे कभी किसी से याचना नहीं करतीं, बल्कि हमेशा देते रहने और परित्राण करने के लिए तैयार रहती हैं। उनके हाथ जब किसी को आशीर्वाद देने के लिए उठते हैं, तो स्पष्ट हो जाता है कि पता नहीं कितने सहस्र प्राणियों का उन्होंने कल्याण किया होगा।

अपने साधु होने के पहले की चर्चा वे नहीं करते पर उनकी बातों और कार्यों से पता चलता है कि वे अच्छे विद्वान् होने के साथ-साथ बड़े कुशल डाक्टर रहे होंगे। उनके इन दोनों गुणों का प्रभाव, जहाँ वे रहते हैं, उस इलाक़े पर पड़े बिना नहीं रहता है।

वे उस दिन भोला माझी को घाट पर ही मिले। नाव किनारे लगाते लगाते ही उसने अचेत दीपा की ओर इशारा करते हुए कहा—"बाबा, देवी इसे किनारे पटक गई हैं। पर यह...।"

बाबा ने उसकी जाँच की। उसके विचित्र सौन्दर्य की ओर भी उनका ध्यान गया। मन ही मन उन्होंने निश्चय किया—'इसे मरने नहीं दूँगा।'

उसे औषधि देते देते उन्होंने उसके कान में कहा—'तुम्हें मरने का अधिकार नहीं है !'

फिर वे गंगा की ओर देखने लगे, मानों उनसे उनकी इच्छा पूछ रहे हों।

उसकी चेतना लौटी। आँखें खोलने पर उसकी नज़र सोनियाँ पर पड़ी। वह पंखा झल रही है, इसलिए उसका चेहरा बारी बारी से पंखे की ओट में छिपता और बाहर निकलता है। दीपा को मालूम पड़ा मानों वह उसके साथ लुकाचोरी खेल रही है और दिखाई देने पर प्रत्येक बार पूछ बैठती है—

'मुझे पहचानती हो ?'

बीच धारा के ऊपर से एक पक्षी बच्चे-के स्वर में चहकता चला गया। 'उ...ध.. र, उ...धर......' करते अन्य पक्षियों का एक झुंड उसके पीछे-पीछे उधर ही उड़ता जा रहा है। मालूम पड़ता है वे सब के सब प्रभात की अभ्यर्थना करने निकले हैं।

नाव का मस्तूल भी हिल-हिल कर सूर्य की प्रथम लालिमा को अपना नमस्कार समर्पित कर रहा है। गंगा के दोनों किनारों के विशाल चित्रपट पर

तरह तरह के रंग-बिरंगे चित्र अंकित होते जा रहे हैं। आख़िरी कूँची फिरने के साथ ही साथ सारा चित्र सुस्पष्ट दिखाई देने लगता है।

उसे भी भली भाँति आँखें खोलने पर ऐसा प्रतीत हुआ मानों पिछले दिन की सारी घटनाएँ दुःस्वप्न थीं। गंगा-तट के प्रभात पर दृष्टि पड़ते किसी अन्य स्वप्न पर विश्वास नहीं किया जा सकता।

पर स्मृति?

वास्तविक दुख संकट से भी वह भयानक होती है। दुख संकट के मुहूर्त्त में उनके प्रत्यक्ष रहने के कारण उनसे संघर्ष चलता है, उस समय प्रयत्न द्वारा अपने को उनसे दूर हटाना संभव हो सकता है। पर उनकी स्मृति हमेशा छिपकर आघात किया करती है। उनके ख़तरे से हर घड़ी सतर्क रहना किसी के लिए भी संभव नहीं होता। असावधानी में यदि अचानक उनका हमला हो जाता है तो वे अपने विष से जीव को तुरंत ही लाचार बना देते हैं। मनुष्य उनके सामने निरस्त्र रहता है, उसे अपने चारों तरफ़ सूना-सूना और घना अंधकार छाया दीखता है। दुख की स्मृति द्वारा प्रस्तुत वातावरण ही मनुष्य को सता सता कर उसका सारा आनंद, सारा सौंदर्य—सारा जीवन ही नष्ट कर देता है।

'पति ने तुझे त्याग दिया है'—यह याद दिला दिए जाने से बढ़कर दीपा के जीवन की और दुखद घटना नहीं हो सकती। पास पड़ोस की जिन स्त्रियों को दीपा के सौन्दर्य वा सुख से ईर्षा रहा करती है उन्हें उसकी वही स्मृति जाग्रत कर उसका जीवन नष्ट होता देखने में ही सुख मिलता है।

पर, अब उसे बाबा का आश्रय प्राप्त है।

दीपा अब यदि कभी भय और उदासी की चपेट में पड़ जाती है तो पहले अपने आपसे और फिर बाबा से पूछती है—'मैंने अपराध किया है?'

'नहीं तो—' बाबा उसकी चिन्ताओं को अपनी शान्त, सहज मुस्कान में उड़ाते हुए कहते हैं—'तूने कोई अपराध नहीं किया।'

इस पुष्टि से दीपा के चेहरे पर छाई हुई संघर्ष की रेखाएँ विलीन हो जाती हैं। उन पर स्वाभाविक आनंद फिर से खेलने लग जाता है।

मठिया के वायुमंडल में रहते-रहते दीपा के स्वभाव तथा रहन-सहन में अद्भुत परिवर्तन हुए हैं। अब उसका स्वभाव फिर से बच्चों का-सा बनने लगा है। गंगा-किनारे जब और कोई नहीं रहता, तो वह भी छोटे बच्चों के साथ जाकर खेलने लगती है। दौड़-धूप के मौक़ों पर वह अपनी साड़ी धोती की तरह लगा, आँचल के फेटे कमरबंद की तरह बाँध लेती है। अपने इस वेष में वह चित्रकारों की 'वीरांगना' प्रतीत होने लगती है। उस समय यदि झाऊ की झाड़ियाँ उसके रास्ते में बाधक होती हैं तो वह उनकी फाँस तोड़कर आगे की क़तार को चीरती-फाड़ती और किननों को पाँवों तले कुचलती आगे बढ़ जाती है।

उसका वह परिवर्त्तन देखकर बाबा को भी कम ख़ुशी नहीं होती। वे मन ही मन कहते हैं—'अब यह व्यर्थ की व्याधियों से मुक्त है। आदमी अगर स्वयं आमंत्रित व्याधि से छुटकारा पाकर जीवन के साथ खेलता—नृत्य करता चलता है, तो क्या उसके सौन्दर्य की कोई सीमा रह जाती है? पर साधारणतया आदमी अपने को वैसा सुन्दर देखना ही नहीं चाहते; नहीं तो वे अपना सौन्दर्य और आनंद नष्ट करने की व्यग्रता को ही अपने जीवन का ख़ास नशा क्यों बनाते?'

बाग़ी

पश्चिम में आकाश के सब रंग विलीन होने जा रहे हैं। अब फीके गुलाबी का स्थान मटमैला रंग लेने लगा है। कछार की बस्ती पर भी धुआँ छाता जा रहा है। उसकी छाया में जितनी भी चीज़ें दिखाई देती हैं, उनकी सूरत उदास हो चली है।

उस पार से आनेवाली आख़िरी नाव बहुत पहले ही आकर इस किनारे लग गई है। घसियारे अपना-अपना बोझ लिए लाठी टेकते गाँव का रास्ता ले चुके हैं। अब ख़ाली नाव प्रवाह के साथ जाना चाहती है। किनारे पर के लंगर ने उसे जकड़कर अटका रखा है। नाव बंधन-मुक्त होने का प्रयत्न करती है। वह ग़ुस्से में भर कर 'च्यों-च्यों' कर मानो दाँत पीसने लगी है।

उसकी ख़ाली भाँगी पर गंगा में पाँव लटकाए दीपा बैठी है। सोनियाँ का छोटा भाई बिरुआ उसकी गोद में लेटा है। वह अपनी

बहन से मछलियों की अद्‌भुत कहानी सुनकर दंग रह जाता है। सोनियाँ प्रायः पातालपुरी की, मछलियों के पेट से अप्सरा और सुन्दर मुन्ने के निकलने की बातें बतलाती है। बीच-बीच में बिरुआ उतावला हो पूछ बैठता है—'और तब दीदी !'

झाऊ की झाड़ियों के पीछे से आनेवाली बंदूक की आवाज़ ने उनकी शांति भंग की। बिरुआ अपनी बहन के आँचल में जा छिपा। सोनियाँ भी दीपा के गले से लिपट गई। और भी निकट से एक आवाज़ सुनाई पड़ी। उधर ही एक क्षण के लिए, एक चिनगारी-सी निकलती भी दिखाई दी।

'वहाँ, वहाँ !' बिरुआ ने ही आँचल से मुँह निकाल उन्हें एक ओर दिखलाया। घनी झाड़ियों के बीच से एक युवक लँगड़ाता हुआ निकल रहा था। दूर से ही उसने दीपा आदि की ओर देखकर उन्हें चुप रहने का इशारा किया। वह उनकी नाव की ओर आया, हाँफता हुआ। उसके कपड़े चिथड़े-चिथड़े हो गए थे। पाँव भी लोहू-लुहान। दीपा की ओर उसकी दृष्टि पड़ी। उसका चेहरा कह रहा था—'मैं धोखा नहीं देती !'

'मुझे अपनी नाव में छिप जाने दो—' कह कर बिना उत्तर की प्रतीक्षा किए ही वह नाव पर आ गया। अपने पीछे की झाड़ियों की ओर इशारा कर उसने कहा—'वे मुझे बलि चढ़ाने के लिए पकड़ने आ रहे हैं।' वह नाव के एक कोने में तख्तों की आड़ में जा बैठा। धीमे स्वर में उसने दीपा को सावधान किया—'यदि वे पूछें तो उन्हें उधर का रास्ता दिखला देना।'

चेहरे धुँधले दिखाई देने लगे हैं, फिर भी किनारे पर खड़े लोगों की वर्दी पहचान में आ जाती है। उनकी कमर में लगी पेटी तथा बंदूकों की संगीनें दूर से ही चमक जाती हैं।

'माझी !' एक सिपाही की आवाज़ आई।

'बाबूजी बाज़ार से नहीं लौटे हैं।' सोनियाँ ने बिना उस ओर

देखे ही उत्तर दिया। उसे उनकी ओर देखने में भी भय लग रहा है।

'तुम लोगों ने इधर से किसी आदमी को भागते देखा है?' दूसरे सिपाही ने पूछा—'वह किधर गया?'

'उस ओर......'. जिधर युवक ने उसे इशारा किया था, वही दिशा दीपा ने नाव की माँगी पर बैठे-बैठे ही दिखा दी।

'आगे बढ़ो!' उन सिपाहियों को उनके अफ़सर ने कर्कश-स्वर में हुक्म दिया। वे उधर ही आगे बढ़ते चले गए। थोड़ी देर में उनके बूट जूतों का शब्द भी विलीन हो गया।

जिन्हें और कहीं ठिकाना नहीं उन्हें बाबा की मठिया में अवश्य आश्रय मिलता है। बाबा को आदमियों से अच्छा और कोई दूसरा यंत्र दिखाई भी नहीं देता। उनकी समझ में आता ही नहीं कि उसे भद्दा और बदसूरत बनाकर, दूसरों को दुख देने और स्वयं दुख उठाते रहने में ही लोगों को क्यों आनंद मिलता है?

किन्तु, वे अपना काम करते जाते हैं। उनकी दृष्टि में, समय के पहले मृत्यु होने से यदि किसी जीव को बचाया जा सके, तो उसे न बचाना हिंसा है, वह हिंसा मनुष्यता का अपवाद होती है। यही सिद्धांत पालन करते रहने के कारण उनकी मठिया में समय-समय पर तरह तरह के लोग एकत्र होते रहते हैं। वैसे ही वहाँ आ जुटा है—सच्चितानन्द!

सच्चिता के जीवन को भाग्यचक्र हमेशा ही नचाया करता है। घर-वालों के साथ उसकी पटरी नहीं बैठती। समाज में रहने के लिए सम्भवतः विधाता ने उसकी सृष्टि ही नहीं की। इसीलिए किसी एक स्थान को पकड़ कर बैठे रहने की उसकी आदत नहीं है। जब वह पढ़ता था, उसके गाँव-घर वालों को उससे बड़ी बड़ी उम्मीदें थीं, पर कालेज से निकलने के

बाद जिस दिन उसने सरकारी नौकरी ठुकरा दी, उसी दिन से उसका और साधारण लोगों का रास्ता अलग हो गया।

वास्तव में, वह अपने को लाचार पाता है। सरकारी मुलाज़िम की आकृति का ख़याल आने पर उसकी आँखों के सामने नाच जाता है सूअर-सा थूथन, भैंस जैसा शरीर, फुटबाल जैसा पेट, जिस पर पैंट की बटनें तन कर टूटती-सी जान पड़ती हैं और हमेशा ख़ून करने के लिए तैयार रहनेवाली क़साई जैसी आँखें। वैसी ही आकृति के एक मैजिस्ट्रेट को, उसने बाग़ी क़रार दिए हुए अपने अनेक साथियों की ज़िन्दगी बरबाद कर दिए जाने का हुक्म सुनाते देखा था। तभी से सरकारी मुलाज़िमों की बाबत वह कहा करता है—'ये कैसे भद्दे और बदसूरत हैं! नहीं, मैं ऐसा हैवान हरगिज़ नहीं बन सकता।'

काफ़ी समय तक वह बिना डाँड़-पतवार वाली नौका की तरह भटकता रहा। इन्हीं दिनों पुलिस ने उसे भी बाग़ी क़रार दे दिया, और कुछ दिन बाद—'बमवाला'। वह उसे गिरफ़्तार करने की फ़िराक़ में लग गई। पुलिस वालों के साथ सचिता का 'लुका-चोरी' खेल शुरू हुआ। इसी खेल के सिलसिले में वह मठिया के घाट पर उस दिन आ निकला था।

आज फिर आकाश, गंगा, धरती, आदमी, पशु, सबने उत्सव का लिबास धारण किया है। बीच गंगा का एक दियारा ऐसा दिखाई देता है मानों उसे डूबने से बचाने के लिए ही गंगा ने अपनी दोनों भुजाओं में जकड़ रखा है। लाल बादलों के बीच में ढके सूर्य की किरणों ने सारे जगत को ही सोने का बना दिया है। प्रकृति के चित्र-पट पर कूँची फेर-फेर कर कोई अज्ञात शिल्पी सबसे कह रहा है—'तुम और भी सुन्दर बन सकते हो!'

उसकी भाषा समझनेवाले को अपने कर्तव्य के विषय में संदेह नहीं है। गंगा की धारा भी वही भाषा समझ रही है। वह धारा उस अज्ञात

चित्रकार द्वारा व्यक्त किए गए भावों को स्थूल-पट पर अंकित कर स्थायी बनाने की चेष्टा कर रही है।

कई नावें धारा में बह रही हैं। गंगा उन्हें थपकियाँ लगाकर संकेत से कहती हैं—'चलती चलो !'

'किधर ?' जल की धारा से उलझती हुई नौकाएँ पूछती हैं।

'चलती चलो—!' गंगा उन थपकियों द्वारा ही उत्तर देती हैं—'संसार को और भी सुन्दर और सुखी बनाने की दिशा में—'

पर आदमियों की दुनिया उससे अलग है। उन्हें पीड़ा से कराहते आदमियों की सूरत ही सुन्दर दीखती है। वे प्रकृति के दिखाए रास्ते के विपरीत चलते हैं। प्रकृति के सौन्दर्य-सृष्टि करनेवाले नियमों में भी वे हस्तक्षेप करते हैं। उसी हस्तक्षेप द्वारा संसार को सुन्दर बनाने के बजाय उसे कुत्सित बनाते रहने के लिए ही कमर कसकर वे सदैव तैयार रहते हैं।

दीपा का वह सौन्दर्य और उतना सा 'सुख' भी उसके गाँववाले बर्दाश्त नहीं कर सके। जटिल जीवन-संघर्ष और विकट परिस्थिति ने उन्हें पस्त-हिम्मत बनाकर उनकी प्रकृति ही अद्भुत ढंग से संहारक और खूँख़ार बना दी है। अपनी क्रियात्मक शक्ति नष्ट कर दिए जाने के बाद वे अब वही शक्ति किसी और में भी अवशेष नहीं रहने देना चाहते। दूसरों का जीवन नष्ट करते रहना ही उन्होंने अपना उद्देश्य बना लिया है। इसी के लिए उन्हें पुलिसवालों की धमकी तथा आतंक ने भी इस बार प्रोत्साहन दिया है।

पुलिसवालों का संदेह धीरे-धीरे दृढ़ होता गया था कि कई राजनैतिक बाग़ी तथा 'बमवाले' दियारे के गाँवों में आश्रय पा रहे हैं। वे उन्हें पकड़वा देने के लिए गाँववालों पर ज़ोर डालने लगे। जब इतने पर भी 'बाग़ी' नहीं हाज़िर किए गए, तब पुलिस ने गाँववालों को तरह-तरह से तंग करना

शुरू किया। निर्दोष आदमियों को चोरी-डकैती के मामलों में शामिल किया जाने लगा। घरों की ख़ानातलाशी तथा उन मौक़ों पर सारे गृहस्थी के सामान की बरबादी, साधारण-सी बात बन गई।

जिन लोगों को सचिता के छिपाए जाने की भनक मिल चुकी थी, वे सारा अपराध दीपा का ही बतलाने लगे। वे कहते—'यदि वह उसे नाव में न छिपाती तो गाँव पर इस तरह की कोई आफ़त न आती।' उनकी दृष्टि में अब दीपा बाग़ियों से भी भयानक बाग़ी बन गई है।

वैसे लोग एक तो दीपा की स्वतन्त्र प्रकृति से पहले ही जले-भुने रहते थे, अब उसे बदनाम करने तथा तरह-तरह की तकलीफ़ पहुँचाने का उनको अच्छा बहाना मिल गया। वे उसे कुलच्छणी, डायन आदि कहने और उसके चरित्र तक पर दोषारोपण करने लगे हैं। पर इतने से ही उन्हें संतोष नहीं होता। वे उसे दंड दिए जाने की व्यवस्था भी निर्धारित करने लगे हैं। कोई कहता है—'इसकी ही वजह से हमारे गाँव की फ़जीहत हुई है। इसे कच्चे बाँस की कमची से पीटकर इसके सिर का भूत उतार देना चाहिए।' कोई उसे थानेदार के हवाले करने और कोई-कोई तो गंगा में डुबो देने तक की धमकी देने लगा है।

जब ये बातें दीपा के कानों में पड़ती हैं तो उसकी मुद्रा बदल जाती है। चेहरे का स्वाभाविक आनंद जाता रहता है, उसका स्थान ले लेता है विषाद। आश्रय के लिए वह चारों तरफ़ दृष्टि दौड़ाती है पर प्रत्येक बार जहाँ आकर वह दृष्टि स्थिर होती है, वह है—गंगा की धारा!

बाबा ने सचिता को गाँववालों से सचेत किया—'इनसे बचना चाहिए। ये भूखे और सताए हुए हैं। इनाम के लालच में सहज ही तुम्हें पकड़ कर पुलिस के हवाले कर सकते हैं। जिनकी मदद की जाती है, उनसे हमेशा सावधान रहना चाहिए।'

इसके थोड़ी ही देर बाद दीपा के पिता बहुत चिंतित और घबराए हुए से बाबा के पास पहुँचे। उन्हें शायद ऐसा ही कोई समाचार मिला था।

वे दीपा को लेकर एक बार काशी जाना चाहते हैं। अगले दिन भोला माझी अपनी तिजारती माल से लदी हुई नाव पर स्वयं काशी जाने वाला है। उसने उन्हें साथ ले लेना स्वीकार कर लिया है पर अपरिचित जगह रहने तथा वहाँ के जटिल कार्य का विचार कर सुजान पंडित को अपने ऊपर पूरा पूरा भरोसा नहीं हो रहा है।

बाबा ने सचिता को उनके साथ कर दिया।

बादलों के घेर रखने पर भी एक ओर से चाँद ऊपर उठता आ रहा है। उसके झिलमिल प्रकाश में नदी का कछार, वृक्ष और किनारे लगी नावें झपकी लेती दिखाई देती हैं। चाँदनी की चादर से अंग ढाँककर गंगा भी ख़र्राटे लेती जान पड़ती हैं।

उन लोगों को .खूब तड़के रवाना होना है, इसलिए माझी और यात्री नाव पर ही सो रहे हैं। दीपा भी नींद की आश्रिता हो नाव की पेटी में बिछी चाली पर लुढ़क पड़ी है। उसके चेहरे पर इस समय झूले पर लेटे हुए बच्चे की-सी हँसी है। पिछले सब संघर्षों की याद उसे विस्मृत हो गई है। अपनी कल्पना की काशी में उसने नया जन्म लिया है।

नाव हिल रही है। दीपा भी हिल रही है, ठीक मानों माँ ही उसे गोद में लेकर प्यार से हिला रही हो।

यात्रा

कछार धुल गए हैं। बाढ़ के समय धरती से चिपटी हुई घास अब फिर से उठने लगी है। गंगा ने मालूम नहीं कितने तरह के बीज यहाँ की मिट्टी में लाकर बो दिए थे। वे सब अब उगते जा रहे हैं।

बिछुड़े पक्षी फिर से मिल रहे हैं। प्रभात ने उनके पर सोने के बना दिए हैं। जिन वृक्षों पर पहले उनके घोंसले थे, वे उनकी टहनियों को आलिंगन करते हैं। अपने चारों तरफ़ उन्हें नई सामग्री दिखाई देती है। बिना विलंब किए वे अपना उजड़ा घर फिर से आबाद करने लग गए हैं।

अनुकूल हवा में माझियों ने भी तड़के ही नाव खोल दी। सिर्फ़ पाल के ही ज़ोर पर नाव उड़ती चली जा रही है। सामने के वृक्ष अब संतरियों जैसे रास्ता रोके खड़े नहीं दीखते। वे अब सिद्ध महात्माओं की भाँति किनारे पर सिर उठाए खड़े आशीर्वाद देते जान पड़ते हैं। नाव उनकी ही ओर खिंचती जा रही है।

नाव की छत से समस्त प्रकृति भी खिली दीखती है। सब मगन हैं। किसी के भी भय अथवा शोक करने का यह अवसर नहीं। किसी के लिए अपने को हीन देखने का कारण नहीं रह गया है।

प्रकृति ने सबको सुन्दरता से सजा दिया है।

उसने शायद थोड़ी ही देर पहले स्नान किया है। नाव की खिड़की से आते हुए सूर्य के हल्के प्रकाश में वह अपने बाल सुखा रही है।

दृष्टि उसकी किनारे की ओर है। किनारे पर खड़े व्यक्तियों के कितने ही चेहरे उसे दिखाई दे जाते हैं। सब चित्र की भाँति एक क्षण के लिए सामने आते और दूसरे ही क्षण विलीन हो जाया करते हैं। उस क्षणिक परिचय में कोई ही उसके सौन्दर्य की सराहना करता सा जान पड़ता है।

वह इसे अपने स्वयंसिद्ध अधिकार की भाँति ग्रहण कर लेती है। दूसरा कोई अन्यमनस्क दिखाई देता है, तो इसे भी वह स्वाभाविक ही मान लेती है और कोई यदि कुटिल निगाहें दौड़ाता दीखता है तो वह उसकी भी परवाह नहीं करती। इस समय वह सारे बाह्य-जगत के प्रति उदासीन बन गई है।

खिड़की के बाहर सिर निकाल उसने झाँक कर देखा। उसे गंगा पर पड़ती अपनी ही परछाँहीं दिखाई पड़ी। वह निर्भीक सी उसके साथ साथ आ रही है, जैसे सगी सहेली ही हो। उसका भी साज उसके अपने चेहरे जैसा ही है।

नाव की छत से उसके चेहरे का जितना भाग दिखाई देता है, उसका सौन्दर्य, सीमा से अधिक वहाँ छाई रहनेवाली ममता अपनी ओर आकर्षित कर रही है। उसके इस आकर्षण में वासना छू तक नहीं गई है फिर भी उसमें अपनी ओर आकर्षित करने की शक्ति वासना से कहीं अधिक है।

सुन्दर स्मृतियों की कुछ रेखाएँ उस चेहरे के गहरे स्तर में छिपी जान पड़ती हैं। नाव की छाया में पड़ी झिलमिली में से दिखाई देनेवाली छोटी मछलियों की भाँति वे छलछल करती एक क्षण दिखाई पड़ती हैं और फिर गहरे स्तर में विलीन हो जाती हैं। उन्हें ग्रास करने के लिए यदि कोई घड़ियाल के रंग की काली, संघर्ष, चिंता या वेदना की रेखा आती दिखाई देती है तो उससे उस सुन्दर चेहरे को मुक्ति दिलाने के लिए उसका कोई भी पारखी अपने जीवन की ममता छोड़ पानी, आग, हवा तक से लड़ने के लिए तैयार हो सकता है।

जिसने भी उसे उस मुद्रा में देखा, उसने अनायास निश्चय किया—'नहीं तुम्हें और झेलने नहीं दूँगा।'

अगला बाज़ार आने पर माझियों ने नाव खड़ी की। पासीख़ाने जाकर भोला माझी कई घड़े ताड़ी और चिखना ख़रीद लाया। नाव की छत पर ही उसे घेरकर और सब माझी बैठ गए। सुजान पंडित पहले नाक-भँव सिकोड़ते रहे, फिर उन्होंने मुँह पर कपड़ा रखा और नाक दबाने लगे। उनकी ओर देखकर भोला माझी ने कहा—'तब छनै—'।

पंडित ने मुँह मोड़ लिया।

'तुम हमारा पीना देखकर हमें नीच समझते हो?' भोला ने उनकी ओर मुँह फेर कर कहा—'पर अपनी करतूत पर तो कभी तुम्हारी नज़र नहीं जाती? हम माझी कितना भी पिएँ, तुम ऊँची जाति वालों जैसा कभी भी नहीं बौराते!'

भोला माझी अधिकतर चुप रहनेवाला और गंभीर प्रकृति का आदमी है पर जब कभी पीने लगता है, तो उसकी ज़बान कुछ ढीली पड़ जाती है। फिर भी, उसका नशा वहीं तक सीमित रहता है। नशे के झोंके में किसी ने कभी उसे गाली-गुफ़्ता या मार पीट करते नहीं देखा। उल्टे, उस मौक़े पर वह पूरा शाह-ख़र्च और दिलेर बन जाता है। उस हालत में वह किसी के दुख की कहानी, आँखों में आँसू

भर कर सुना करता है और कहानी चाहे जिसकी भी हो वह अपनी शक्ति भर उसकी मदद करने को तैयार हो जाता है।

वह सुजान पंडित को समझाने लगा—'देखो पंडित, हमें हर वक़्त पानी से लड़ता रहना पड़ता है। इसमें हमारा जो पसीना निकलता है, उसे ताड़ी छोड़कर दूसरी और कौन सी चीज़ पूरा कर सकती है? दूसरे, मज़दूरी के पैसे बचाकर रखूँ तो किसके लिए? इसीके बल पर हम और हमारे बच्चे कुछ हाकिम-हुकुम गिनाएँगे नहीं। अगर कुछ बच रहेगा तो बाबू बाबाजी लोग ही ठग लेंगे!'

'ग़ुस्सा मुझ पर न उतारो'—सुजान पंडित उसकी ओर देखकर कहने लगे—'हमारी मुसीबत तुम जानते ही नहीं।'

दोनों अपना दुखड़ा सुनाने के लिए उतावले हो उठे। पहले माझी ने अपनी कहानी सुनाई। ज़बान लड़खड़ा रही थी किन्तु वह पंडितजी की गाथा सुनने के लिए तैयार था।

पंडितजी की कहानी साधारण थी।

उनका का जन्म अति दरिद्र परिवार में हुआ था। यजमानी की अल्प प्राप्ति, स्वभाव भोलाभाला और अति उदार होने के कारण अतिथि-अभ्यागत और दान के ही पीछे ख़र्च हो जाती थी। उनके परिवारवालों को माँड़-भात भी मुश्किल से जुट पाता था लेकिन जब उनके स्वसुर महाशय का देहांत होने लगा तो वे अपनी मध्यम श्रेणी की सारी संपत्ति सुजान पंडित के नाम लिख गए। फिर भी, पंडितजी के दिन नहीं फिरे। हर दूसरे-तीसरे साल उनके घर एक कन्या जन्म लेती। बड़ी हो जाने पर उन कन्याओं की शादी के अवसर पर पंडितजी को कुछ न कुछ संपत्ति, रहे न रहे, जायदाद रेहन रखने के लिए मजबूर होना ही पड़ता था।

दीपा उनकी आख़िरी कन्या थी। जब वह पाँच साल की थी उसकी माँ का देहांत हो गया। अपनी इस कन्या पर ही सुजान पंडित

की बड़ी ममता थी। उसका ज़िक्र करते हुए उन्होंने कहा—'जब वह दरवाज़े पर खेला करती, राही उसे देखने के लिए खड़े हो जाते, ऐसी वह सुन्दर थी। सब उसकी तारीफ़ किया करते। गाँव के लोग जब बाज़ार से लौटते तो वे उसके लिए बताशे लेते आते। हमारे दरवाज़े से अगर कोई घुड़सवार गुज़रता, तो वह दीपा को घोड़े पर बैठाकर थोड़ा टहला देता, तब आगे बढ़ता। बड़ी होने पर घर का काम-काज सम्हालने में वह ठीक अपनी माँ-जैसी चतुर निकली।'

इतनी भूमिका के बाद वे अपने दुख की कहानी विस्तार से कहने लगे—'अभी तीन साल पहले मैंने उसकी शादी कर दी थी। जितनी ज़मीन संपत्ति थी, मैंने तिलक में सब उस लड़के के नाम लिख दी। लेकिन वह लड़का क्रिस्तान कालेज में पढ़ता था। उसके कुल की मर्यादा देखकर मैंने इस बात का कुछ ख़याल नहीं किया। यहीं से मेरी बिपत्ति शुरू हुई।...जब वह एक बार दीपा की रुखसती कराने आया तो देखा, उसके अंग पर था कोट और पाँवों में बूट जूता। ख़ैर, देखने में सुन्दर लगता था। पर उसने दीपा के इक्के पर परदा डालने से भी मना कर दिया। गाँव में बड़ी निन्दा हुई पर इसे भी जाने दो। आया सुराज का हल्ला—उसने घर आना छोड़ ही दिया, मालूम नहीं बाहर कितने जातवालों के साथ उसका खान-पान चलने लगा। चमार, प्रसाध, जुलाहा, भंगी किसी को भी नहीं छोड़ा। उसके गाँव के लोगों ने उसे जात से बाहर कर दिया। यह तो अच्छा नहीं सोच कर समझाने-बुझाने के लिए मैं उसे अपने घर ले आया। गाँववालों ने कहा—'लड़का क्रिस्तान हो गया है, उसे अपने घर मत टिकाओ।' भला यह कैसे हो सकता था? मैंने अपने गाँववालों की बात नहीं मानी। उन्होंने मुझे भी जात से निकाल दिया। यजमानी की आय मारी गई पर ब्राह्मण को भिक्षा में पाव भर अन्न जुट ही जाता है। तब वह चला गया जेल।'

'जेल ?' पंडितजी की कहानी सुननेवाले सब माझी उनकी ओर आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगे ! भोला माझी भी अवाक् हो मुँह बाए सुन रहा था। उसने कहा—'ये सिपाही होते हैं पाजी ! कोई नशा पिए तो इसमें मालूम नहीं उनके बाप की कौन-सी मिलकियत बिकने लगती है।'

'अजी, नशा पीने के जुर्म में नहीं'—पंडितजी ने कहा—'अंग्रेज़ बादशाह का बेटा आया था। उसे ही उसने काला झंडा दिखा दिया था। बस, इसी जुर्म में उसे साल भर की क़ैद हो गई। गाँव में भी तरह-तरह के लोग होते हैं। औरतें भी एक धुरंधर—मेरी दीपा की ओर वे भी उँगली उठाने लगीं—'च्...च्...ऐसी बच्ची को छोड़ इसका स्वामी भ्रष्ट हुआ और जेल गया—छी: छी:।'

सच्चिता अब तक पतवार पकड़े बैठा-बैठा पंडितजी की कहानी से अन्यमनस्क हो किनारे की ओर देख रहा था। दीपा का ज़िक्र आने पर ध्यान से सुनने के लिए वह खिसककर आगे आ बैठा। उसके चेहरे पर अपने प्रति सहानुभूति का भाव देखकर पंडितजी ने उससे कहा—'मैं अपना दुखड़ा रो रहा हूँ बच्चा ! यह भोला माझी बड़ा अच्छा आदमी है। उसे ही सुना रहा हूँ। इसने मुझ ग़रीब ब्राह्मण पर दया करके अपनी नाव में जगह दे दी है। अपनी सत्तू की पोटली लिए बाबा विश्वनाथ के दरबार तक पहुँच जाऊँगा।'

'पंडित !' भोला माझी उँगली दिखाकर धमकी-सी देते हुए कहने लगा—'हम में जीवट है। तुम हमारी नाव पर सत्तू खाओगे और मैं भात ? यह भला तुमने सोचा कैसे ? नाव में कई बोरा सीधा है, तुम ब्राह्मण हो, जितनी दक्षिणा चाहिए लेकर, काशी उतरना।'

'अच्छा देखा जायगा'—कह उस बात को टालते हुए पंडितजी अपनी कहानी कहने लगे—'तब तो मेरी दिपिया रात-दिन रोते-रोते बेदम हो गई। मैं समझाता था, वह मानी ही नहीं—तब मैं उसके पति से भेंट

कराने उसे जेल ले गया। मुझे मालूम नहीं, इस बच्ची को उसने क्या समझाया! जेल में, क़ैदियों के खाने और रहने के विषय में जैसा उसने अपने पति से सुना और आँखों देखा, घर आकर वह उससे भी ख़राब ढँग से खाने और रहने लगी। अगर उस वक़्त तुम उसका चेहरा देखते! रोना-धोना उसका बंद हो गया था ज़रूर, पर वह स्वयं लिया हुआ कठिन व्रत करते-करते सूखकर एकदम काँटा हो गई। वे दिन बड़ी बुरी तरह ज्यों-त्यों कर कटे। मैंने सोचा था वह जेल से छूटकर आएगा तो उसकी शुद्धि कराकर हमेशा अपनी आँखों के सामने रखूँगा—कभी बाहर जाने नहीं दूँगा। पर घर कौन लौटता है? एक चिट्ठी तक नहीं! बहुत खोज की पर जेल से छूटने पर वह कहाँ जाकर रम रहा, कुछ भी पता नहीं चला।

तब, सुपरडंट साहब एक दिन पुलिस के जत्थे के साथ हमारे दरवाज़े पर आ धमके। उन्होंने कहा—'यह घर-द्वार खेती-बारी सब सरकार ज़ब्त करके अभी नीलाम पर चढ़ाएगी।' मैंने कहा—'सरकार! मैंने तो कोई क़सूर किया नहीं!' तब सुना—हमारे लाल रेल-डकैती के मामले में किसी नौजवान की मदद करने के अपराध में पकड़कर जेल भेज दिए गए हैं। उन पर जो जुर्माना लगाया गया है, उसी की वसूली के लिए उनके नाम की सारी जायदाद नीलाम की जा रही है। उन्होंने मेरे ही घर से मुझे और दिपिया को उसी दम बंदूक और बेइज़्ज़ती की धमकी देकर बाहर निकाल दिया। बनियाँ, ज़मींदार, सब हमारी खेती और घर पर दाँत लगाए बैठे थे। पर बलिहारी है मठिया के बाबाजी की! उन्होंने किसी को बोली ही नहीं बोलने दी। सब कुछ उन्होंने अपने एक चेले से ख़रिदवा अगले दिन ही दिपिया के नाम करा दिया।

'फिर मैं दिपिया को लेकर उससे मिलने जेल गया। पर इस बार सिपाहियों ने हमें जेल के फाटक पर से खदेड़कर भगा दिया। ख़ैर, उसके ख़िलाफ़ मुक़दमा कमज़ोर था। थोड़े दिन बाद ही वह छूट

गया। अभी तीन चार महीने हुए, एक दिन मालूम नहीं कहाँ से वह भूला भटका घर आया। मैं हज़ार रोकता रहा पर सुनता कौन है—हमारे घर पर ही उसने गंगौट में अपने कपड़े रँगे और अगले दिन फिर ग़ायब। दिपिया उसके पीछे-पीछे गई और गंगा में डूबते-डूबते बची। अब हाल में पता लगा है कि वह काशी में है। हमारे पट्टीदार शालिग्राम पंडित तीर्थ करने गए थे तो उनसे मिला था। वे कहते हैं कि अब वह बैरागी हो गया है। गेरुआ वस्त्र पहनता है और तुलसी घाट के पास कहीं रहता है। पंडितजी ने जब उससे घर चलने को कहा तो उसने जवाब दिया—'अब सुराज होने पर ही घर लौटूँगा'। इस सुराज ने, और कुछ हो न हो, मेरा घर तो बिलकुल चौपट कर दिया। घर-गृहस्थी जाए या रहे, इसकी भी चिंता नहीं। लेकिन मेरी दिपिया का क्या होगा? मैं अब उस बैरागी से यही पूछने जा रहा हूँ।'

'पंडितजी!' सचिता ने उनसे पूछा—'वह रविशंकर ही तो नहीं हैं?'

'हाँ, हाँ! तुम उन्हें जानते हो?'

'कैसे नहीं जानूँगा? विद्यालय में वे मेरे शिक्षक थे!' विद्यार्थियों की एक क्रांतिकारी मंडली—आज़ाद-दल वालों की जमात में भी सचिता ने कई बार उन्हें प्रमुख भाग लेते देखा था।

रविशंकर का छात्र होने के कारण सुजान पंडित को सचिता अपना निकट संबंधी सा दीखने लगा। उन्होंने कहा—'तो फिर तुमसे क्या परदा? हमारी मुसीबतों का तुम्हीं ख़याल करो! रविशंकर के ही कारण मेरी हालत अछूत-अपाहिज से भी बदतर हो गई। अपनी ओर से मैं उसे माफ़ करता हूँ पर दीपा की बात सोचो! गाँव वाले उस पर हँसते हैं। जिधर जाती है लोग उसकी ओर उँगली उठाकर तरह तरह का कलंक लगाते हैं।'

पंडितजी ने मुँह नीचा कर धीमी आवाज़ में कहा—'औरतें कहती हैं—'पति के बिना ही वह मोटी हो गई है।' अब भला उस गाँव में

हम कैसे रह सकते हैं ? मैं तो ग़रीब ब्राह्मण हूँ; माथे पर चूने का टीका लग जाने पर भी लोग एक मुट्ठी भिक्षा दे ही देंगे। लेकिन दीपा ? उसके लिए तो कहीं भी आश्रय नहीं रहा ! उसने तुम्हारे सुराज-बैराग का क्या बिगाड़ा है ?" उनका गला रुँध गया। अपने घुटनों को दोनों बाँहों से समेटकर उनके बीच में उन्होंने मुँह छिपा लिया।

सचिता के लिए यह नया दृष्टिकोण था। अपने कार्य या आदर्श को इस दृष्टि से देखने का अवसर उसके सामने और पहले कभी नहीं आया था। वह गंगा की ओर मुँह फिराकर सोचने लगा।

कछार पर कई औरतें घड़े भरने के लिए घुटनों तक पानी में खड़ी थीं। नाव आती देखकर वे दृष्टि नीची करके खड़ी हो गईं। उन्हें देखते ही सचिता को याद आया—'हम हैवान होना नहीं चाहते, पर फिर भी इनके लिए कहीं तो आश्रय रहने दिया जाता।'

गंगा उसे धिक्कारती दिखाई पड़ी। नाव के जँगले से बाहर झाँकनेवाली दीपा की आकृति भी धिक्कारती जान पड़ी। उस ओर अधिक देखने का उसे साहस नहीं हुआ।

बंधन

काशी विचरण करनेवालों का नगर है। यहाँ बम भोलानाथ की मस्ती की छाप हर गली में मिलती है। बंदर, साँड़ और साधु-संन्यासी सबका यहाँ के रास्तों पर समान रूप से अधिकार है। इनमें से प्रत्येक जीव एक दूसरे की आज़ादी में भरसक आपत्ति नहीं करता।

आगंतुक यहाँ की इस मस्ती से ही भय खाते हैं जिसमें उन्हें खो जाने का डर रहता है। शायद इसीलिए, ख़ास कर यहाँ की सड़कों पर, दूर के गाँव से आये हुए औरत-मर्दों के झुंड आपस में एक दूसरे के कपड़ों से गाँठ बाँधकर चला करते हैं।

दीपा के पाँव भी बहुत सहमे-सहमे पड़ रहे हैं। वह बंदर, साँड़ या किसी साधु के सामने पड़ने पर अपने पिता का हाथ पकड़ लेती है। सचिता उन्हें आगे-आगे रास्ता दिखाता चल रहा है।

दीपा का ध्यान गंगा स्नान कर लौटनेवाली कई औरतों पर गया।

उनके चेहरों पर प्रसन्नता ह। मन ही मन वे कुछ जप करती जा रही हैं। दीपा ने सोचा—'ये हमारे गाँव की औरतों की तरह कुटिल नहीं हैं। ये मुझे सताएँगी नहीं। मैं भी इनकी ही तरह ख़ुश रह सकती हूँ।'

वे एक धर्मशाले के फाटक पर पहुँचे। चौकीदार की प्रतीक्षा में उन्हें कुछ देर रुकना पड़ा। सचिता की दृष्टि सामने से गुज़रती एक पालकी गाड़ी पर पड़ी। उसका कोचवान, रास्ते पर ज़्यादा भीड़ न रहने पर भी, चिल्ला चिल्लाकर 'हटो-हटो' कहता जाता था और पीछे खड़ा नौकर टिटकारी देता—'हेट...हे ओ...हे-टो...' कर उसकी पुष्टि कर रहा था। गाड़ी में रेशमी साड़ी पहने कोई अकेली युवती बग़ल में किताबें रखे कालेज जा रही थी।

वैसे सजे सजाए लिबास में फूले गाल और भरा चेहरा सचिता ने काफ़ी अरसे के बाद देखा था। इस अवधि में उसका दृष्टिकोण काफ़ी बदल गया था। गाँवों में अब तक किसी भी युवती का चेहरा उसे ऐसा न मिला था जिस पर उदासी की छाप न हो। वह अब दुनियाँ की तकलीफ़ों के बर्दाश्त करते जाने के अनुपात में ही सौन्दर्य देखने लगा था; शायद इसीलिए कालेज जाने वाली युवती के चेहरे पर उसे कोई सौन्दर्य दिखाई नहीं दिया। उलटे उसने मन ही मन कहा—'इन्हें हमेशा प्रचुरता का अहंकार रहता है और ये सिर्फ़ भद्दे सपने देखा करती हैं। कालेज से निकलकर किसी सरकारी अफ़सर या रईस के घर ही जाएँगी, जहाँ ये किसी मोटी गाय से अधिक शोभा नहीं पाएँगी।'

उधर से मुँह फिराते ही दीपा पर उसकी दृष्टि पड़ी। वैसे अचानक दृष्टि पड़ जाने के सिवा अब तक उसने कभी सिर उठाकर उसे देखा न था। यह चेहरा उस रेशमी पोशाक वाली के चेहरे से बिलकुल ही भिन्न था। इधर देखते ही सचिता के भीतर औरतों के प्रति जो झुँझलाहट

का भाव आया था वह जाता रहा। दीपा के संबंध में वह सोचने लगा—'इसकी सृष्टि वास्तव में सुन्दर बने रहने के लिए ही हुई है। यह जहाँ भी रहेगी उस स्थान को शुद्ध और पवित्र ही करेगी।' दीपा की आँखें मानो उसे कहती जान पड़ीं—'तुम मुझे नहीं छोड़ सकते!'

सचिता को उसकी यह माँग स्वाभाविक लगी।

किसी ख़ास उत्सव या पर्व का दिन न होने के कारण धर्मशाले में काफी जगह थी। तिमंज़िले की छत पर उन्हें दो एकांत कमरे मिल गए। घर से पंडितजी जो सामान लाए थे वह भोला माझी की दक्षिणा के साथ मिलकर अभी कई दिनों तक चल सकता था। धर्मशाले के चौकीदार ने बर्तन और लकड़ी आदि की व्यवस्था भी कर दी।

छत के एक कोने में दीपा रोटी सेंकने के लिए आग जलाने गई। लकड़ी गीली थी। फू...फू...करते-करते उसकी आँखें लाल हो आईं। आँखों को थोड़ा विश्राम देने के लिए, वह छत के चारों ओर देखने लगी। जिधर देखती उधर ही उसे एक-से-एक कन्धे भिड़ाए पत्थर के सफ़ेद ऊँचे-ऊँचे मकान सिर ऊँचा किये खड़े दिखाई देते। माधवराव के धौरहरे पर जाकर उसकी दृष्टि अटक गई। धौरहरे के दोनों मीनार उसे आकाश छूते जान पड़े। बचपन में उसने सुन रक्खा था कि रामजी आकाश में ही रहते हैं। इस समय उसने अनुमान लगाया—'उस मीनार पर से ही उनके यहाँ पहुँचने का रास्ता होगा।'

नीचे झाँकने पर गंगा दिखाई पड़ीं। दीपा उनसे बचपन से ही परिचित थी। वह परिचय इस अपरिचित नगर में उसे बहुत सांत्वना देने लगा। उसे प्रतीत होता था मानो गंगा उससे कह रही हैं—'भय नहीं! मैं तेरे पास हूँ।'

जीवन की अभिज्ञता आदि अनेक विषयों में दीपा अपने को सचिता से वयस्क मानती है और इसीलिए उस पर उसका स्नेह मातृत्व के भाव

से सना रहता है। जब से उसने परदा करना छोड़ दिया है, वह उसके घर लौटने की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा किया करती है और उसे अपने सामने बिठाकर खिलाने के बाद ही स्वयं भोजन करती है।

सचिता जैसे हमेशा ऊट-पटाँग जीवन बिताने और भटकनेवाले के लिए यह बिलकुल नया अनुभव है। अब उसे इससे संतोष और आनंद मिलता है कि—

'मेरी भी फ़िक्र किसी को रहती है।'

रविशंकर को ढूँढ़ लाने का भार उसने अपने ऊपर लिया है पर काशी में मंदिरों की तरह साधु-संन्यासियों के अड्डों की भी कमी नहीं है। दूसरे, संन्यासी हमेशा ही भटकते और स्थान परिवर्तन करते रहते हैं; इसलिए उन मोह-माया के झंझट से दूर भागने वालों को भी यहाँ पर खोज निकालना वैसा आसान नहीं है।

धर्मशाले में कई दिन टिकने के बाद भोजन जुटाने की चिन्ता भी आने वाली थी। सुजान पंडित यह सब भार बाबा विश्वनाथ पर ही छोड़े रहना चाहते थे पर सचिता को उससे संतोष न था। दीपा जितने अन्यायों की शिकार बन चुकी थी उनसे अवगत हो जाने पर बाबा विश्वनाथ के न्याय पर उसे पूरा भरोसा नहीं रह गया था।

जिससे उसे सबसे अधिक चिढ़ थी वही करने को बाध्य होकर वह एक दिन—नौकरी ढूँढ़ने निकला। बहुत तलाश करने पर उसे अपने कालेज का एक साथी मिला। उसको दवा की दूकान थी। दूकान छोटी होने के कारण उसकी तनख्वाह भी कम थी। पर एक सुविधा थी, वहाँ काम करने पर उसे रहने के लिए गंगा किनारे का एक सुन्दर मकान उसका मित्र दे सकता था।

उसने नौकरी स्वीकार कर ली। उसमें अपमान अनुभव करने के

बजाय अपने को आनंद मनाता देख उसे आश्चर्य भी नहीं हुआ।

उसके अंतःकरण में यह आनंद अब और भी अधिक है वह सोचता है—'मेरी भी माँ है!'

कलंकिनी

ब्राह्मवेला होते ही शांत, सुप्त गंगा नृत्य के लिए उठ पड़ती हैं। अपने शरीर पर पड़ी हुई अँधेरी रज़ाई दूर फेंककर वे झिलमिले कज्जल वस्त्र धारण करती हैं। उनकी थपेड़ों से किनारे और घाट जगने लगते हैं।

इसी समय, दशाश्वमेध घाट पर बिलातू की शहनाई बज उठती है। वह भैरवी समस्त रात्रि का संचित माधुर्य हवा में बिखेर देती है। रामनगर तट के वृक्ष उसे पान कर झूमने लगते हैं।

दीपा भी उठ बैठती है। उसकी खिड़की से ही काशी की पूरी गंगा दिखाई दे जाती हैं। वह उन्हें नमस्कार करती है। उसके हज़ार कोशिश करने पर भी भैरवी की तानें उसे अतीत की ही ओर खींच ले जाती हैं। अपने जीवन के उस अमिट दिन की उसे याद आने लगती है।

वह उसकी शादी का दिन था। बहुत तड़के ही इसी तरह रोशन चौकी से निकलकर भैरवी यह संदेश सुनाने आई थी। उसने दीपा के हृदय तक प्रवेश

कर वहाँ के न मालूम कितने तार एक साथ झंकृत कर दिए थे। उस झंकार से दीपा सिहर उठी थी—आनन्द की अपेक्षा विस्मय से। पता नहीं किस अज्ञात लोक में उसे खींच ले जाने के लिए भैरवी उसे प्रेरित करने आई थी! उस ओट में छिपे जीवन की कहीं एक भी झाँकी वह देख पाती?

पिता, सखी, सहेली और ज्योतिषी तक ने बतलाया है कि उसके जैसा सौभाग्य बिरली ही कन्याओं का होता है। उसी दिन से उसका वह सुख-सौभाग्य विकसित होनेवाला है। उसके भावी जीवन की राह में फूलों की सेज बिछी है।

पर, भाग्य और ही नियम से चलता है। वहाँ किसी की भी दलील नहीं सुनी जाती। उसे जिधर ले जाना था, दीपा उधर ही गई।

सुख और सौभाग्य?

हाँ, वे बहुत निकट आ गए दीखते थे। शायद एक मुहूर्त्त के लिए उन्होंने उसे स्पर्श भी किया। पर उस क्षणिक स्पर्श की अनुभूति के पहले ही वे अंतर्द्धान हो गए। पता नहीं कहाँ! ठीक उस भैरवी के माधुर्य की तरह।

शहनाई की गत विलीन होते होते उसके मन में भावना उठने लगी—'अब वे नहीं लौटते!'

मंदिरों में घड़ी-घंटे बज उठे। उनकी आवाज़ से पत्थर तक थर्राने लगे हैं। मालूम होता है जैसे उनकी एक एक चोट से ही अंधकार दूर भागता जाता है। बीच बीच में शंख अपनी विजय घोषित कर देता है।

दीपा अब भी अपने अतीत में ही खोई हुई है जिससे वह निकलना नहीं चाहती। जहाँ से उसके जीवन ने नया रास्ता पकड़ा था वह वहीं रुककर एक नया रास्ता लेना चाहती है। स्मृति उसे ठगने के

लिए विश्वास दिलाती है कि उन बीते दिनों में उलट-फेर करना अब भी संभव है। पर थोड़ी देर बाद वही स्मृति उन दिनों के अंधकार में अधिक रह नहीं पाती। वह एक ही छलाँग में वर्तमान तक पहुँच जाती है और दीपा को चिढ़ा चिढ़ा कर कहने लगती है—'परिवर्तन? अपना मुँह तो देख! लोगों ने उस पर कितनी कालिख पोत दी है।'

उसका प्रभात-स्वप्न टूट जाता है। वह सच ही अपने को कुत्सित समझने लगती है। सब अपराध अपने ही ऊपर लेकर कहती है—'मेरे लिए और कुछ भी नहीं हो सकता था। मेरा भाग्य ही ऐसा है।'

घंटों की आवाज़ तीव्र होने लगती है। घाट पर स्नान करनेवालों की संख्या बढ़ती जाती है। उनके चेहरे भी अब पहचान में आने लगते हैं।

वे भी अहल्याबाई घाट पर स्नान करने जाते हैं। दीपा स्त्रियों के लिए बने टीन के घिरावे में घुसती है। वहाँ इस समय और कोई नहीं है। गङ्गाजी का एक बार स्पर्श कर वह सबसे नीचे की सीढ़ी पर बैठ जाती है।

अंधकार की ओर खिंचते हुए विचारों से अभी उसे छुटकारा नहीं मिला है। पानी की ठंढक के साथ साथ वह अपने जीवन की सार्थकता की जाँच करती है। उसे वह निरर्थक जँचती है। तब ख़याल आता है—'गङ्गा गहरी हैं। इन सीढ़ियों से फिसल कर नीचे चले जाने पर ऊपर कुछ भी दिखाई नहीं देगा। किसी को कुछ पता भी न चलेगा।'

वह उठना चाहती है। पर घाट के ऊपर से उस सूरदास का गाना सुनाई देने लगता है। वह रोज़ इसी समय आकर भिक्षा के लिए कपड़ा बिछाकर वहाँ बैठ जाता है। शहनाई वाले धीमी आवाज़ में तान छेड़ते हैं। सूरदास उसमें सुर मिला कर गाता है—

'प्रभु मोरे अवगुन चित न धरो—'

दीपा को जान पड़ता है जैसे यह उसकी ही प्रार्थना हो। वह स्वयं गा नहीं सकती, फिर भी उस गाने में उसे अपने ही अंतःकरण की आवाज़ सुन पड़ती है। गाने के प्रत्येक शब्द से उसे रोमांच हो आता है।

वह सामने देखती है। उधर लाली छिटक रही है। गंगा में भी वही लाली घुलने लग गई है। उसी फीके गुलाबी पानी पर उस पार से उतराती हुई एक नाव आ रही है। सूरदास अपने गाने की अंतिम कड़ी पर पहुँचता है—

'अब की बेर मोहिं पार उतारो.........'

दीपा डुबकी लगाकर बाहर निकल आती है। सारा दृश्य बदल गया है। अब उसे अपने चारो तरफ़ चमकता हुआ सौन्दर्य दिखाई देता है। अपना रंग भी ठीक वैसा ही बन जाने में उसे संदेह नहीं रह जाता।

अब वह जीना चाहती है।

घर में अकेली पड़ जाने से उसका समय बुरी तरह कटता है। चारो तरफ़ उसे सूना-सूना दीखता है। इस समय अपने मन की ही कहानी उसे भयभीत किया करती है। सच्चिता के घर लौटने की वह बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगती है।

जब वह सचमुच घर आता है तो सिर्फ़ उसके चेहरे पर एक बार देख कर ही वह सब समझ लेती है। समाचार निराशाजनक होने पर उससे कुछ पूछने की हिम्मत नहीं होती। सुजान पंडित अवश्य ही अपनी छानबीन का समाचार सुनाते हैं।

दीपा दरवाज़े की ओट से उनकी बातें सुनती है। अपने को बहुत समझाने-बुझाने की कोशिश करने पर भी अवसाद की चपेटों को सम्हालना उसके लिए कठिन हो जाता है। वैसे मौक़े पर यदि उसके पिता और सच्चिता उसे अकेला छोड़कर फिर बाहर चले जाते हैं तो वह एक

कोने में बैठकर मुँह छिपाकर रोने लग जाती है। वह अकेलापन उसे बर्दाश्त के बाहर हो जाता है।

एक दिन सचिता दरवाज़े तक जाकर अपनी छड़ी लेने फिर वापस आया। छिपाने की कोशिश करने पर भी दीपा की आँखों के आँसू सचिता के सामने ही ढलक पड़े। सचिता खड़ा हो गया। उसके कारण पूछने पर दीपा ने उत्तर दिया—'यों ही।'

स्वयं उस उत्तर को संतोषप्रद न समझकर बात टालने का बहाना जानते हुए भी उसने सचिता से पूछा—'आज तुम्हें लौटने में देर होगी?'

'हाँ।'

'किधर जाओगे?'

'दूर नहीं, दशाश्वमेध तक ही।'

'मुझे भी......' सिर नीचा कर वह सिर्फ़ इतना ही कह सकी। सीढ़ी से उसके पिता सचिता को पुकारने लगे। सचिता उनसे दीपा को भी साथ ले जाने की अनुमति माँगने गया। उन्होंने दे दी।

दीपा के काशी आने पर यह पहला ही मौक़ा था जब वह बाहर घूमने निकली।

इस सैर में ही उसे आज़ादी का पहला आभास मिला है जिसने उसका हृदय एक विशेष आनंद से परिपूर्ण कर दिया है। उस आनंद की न तो उसे जानकारी है, न उसका वह कोई कारण ही बतला सकती है। उस आनंद का किसी प्रकार के सांसारिक सुख से भी संबंध नहीं है। वह थोड़ी देर के लिए अपने को सब तरह के बंधनों से मुक्त अनुभव करने का आनंद है।

उसके पाँव हठात् उसे बहुत हलके मालूम पड़ते हैं। सामने से गुज़रनेवाले हर किसी को देखकर उसे अनायास ही प्रसन्नता हो रही है। यदि उसके पास धन होता तो शायद जितने चेहरे उसे अभाव मह-

सूस करते दिखाई देते उन सबकी इच्छा वह पूर्ण करती हुई चलती।

'दाता! माँ.........' दीनता के स्वर में एक भिखारी कह रहा था।

वह खड़ी हो गई। सचिता से उसका बटुआ माँगकर उसने भिखारी के बिछे वस्त्र पर कुछ डाल दिया। भिखारी ने उसे आशीर्वाद दिया। पर वह सब सुनने की उसे फ़ुर्सत नहीं है। वह भिखारी के साथ-साथ परिचित-अपरिचित सभी की मंगल-कामना करती आगे बढ़ी।

वे घाट पर पहुँचे। मंदिरों की परछाइयाँ लंबी होकर सारी गंगा को ही ढँक रही हैं। सूर्य की अंतिम किरणें सिर्फ़ उस पार के वृक्षों की फुनगियों पर दिखाई देती हैं। उस जगह के पल्लव हिल हिल कर इस पार के मंदिरों के ऊँचे कलशों और काशी नगरी से गले मिलने के लिए अपनी व्यग्रता जतला रहे हैं।

काशी के घाट विशाल रंगमहल के मंचों जैसे बन रहे हैं। शहर की ओर से आनेवाले रास्ते मानों नेपथ्य से आने के प्रवेशद्वार हैं। उन्हीं रास्तों से झुंड के झुंड नर-नारी इस समय रंग-बिरंगे लिबास में सीढ़ियों-वाले मंच पर प्रवेश कर रहे हैं। रामनामियाँ और शिव-शिव छपी चादरें, तरह-तरह की धारीवाले अँगौछे और भिन्न भिन्न रंगों की साड़ियों की पाड़ें दूर से ही चमक जाती हैं। दूर से देखने पर मालूम पड़ता है वे सब साधन किसी विशाल आयोजन को सर्वांगीण संपूर्ण बनाने के लिए वहाँ इकट्ठे होते जा रहे हैं। सबके चलने का ढंग अलग-अलग है फिर भी वे किसी एक ही संगीत की कड़ियों-जैसे दीखते हैं। सिर्फ़ आदमी ही क्यों, घाट किनारे के मंदिर और अट्टालिकाएँ भी उस विशाल मंच पर अपना अपना काम बहुत अच्छी तरह पूरा करती जा रही हैं। सारे दृश्य की झाँकी एक साथ देखने पर पता चलता है जैसे कोई संगीत ही वहाँ जमा करके रख दिया गया हो।

उसी संगीत के ताल में दीपा और सचिता भी आगे बढ़ते जा रहे हैं। सीढ़ियों पर जगह-जगह छतरी लगी चौकियों के मंच के पास वे

थोड़ी देर रुक जाते हैं। सभी मंच इस समय भरे हुए हैं। उन पर बैठे लोग चंडूख़ाने की गप से लेकर सांख्य-दर्शन तक की चर्चा चला रहे हैं। दीपा जहाँ रोज़ स्नान करने जाया करती है उस घाट के एक मंच पर इस समय कीर्त्तन करनेवाले बंगालियों की मंडली बैठी है। गानेवाले के बाल लंबे हैं। उसकी वेष-भूषा नर्त्तकों जैसी है। इस समय वह अपनी भंगिमा द्वारा अपने गीत का भाव बतला रहा है—

'आमि जमुनाने जाबो गोधनी चराबो
साधिबो मनेर साधा ;
त्रिभंग हइए मुरली बाजाबो
कानूरे करिबो राधा।'

दीपा बँगला नहीं जानती फिर भी गानेवाले की भंगिमा दिखाने की निपुणता के कारण उसे गीत का भावार्थ समझने में दिक़्क़त नहीं होती। उसने आज तक कोई नाटक नहीं देखा, इसलिए ठीक बच्चों की भाँति अवाक् होकर कीर्तन सुन रही है। कीर्तनकार आगे की कड़ी गाता है—

'आमि जोगिनी हइया जाबो देसे देसे
जे थाए निठुर हरि'।

इस बार उसके भाव-प्रदर्शन ने दीपा को एक-ब-एक बहुत उदास बना दिया। तब वे सब मिलकर आगे की अंतिम कड़ी गाने लगे—

'यदि मिलाए बिधि मम गुन निधि
आनिबो अंचल करे—'

इस बार मृदंग, मजीरा, करताल आदि एक साथ ही झमझम कर बजने लगे। दीपा की उदासी दूर हुई पर कीर्त्तन भी वहीं समाप्त होगया।

'चलो !' सचिता को वह आगे खींच ले चली, दूसरी मंडली की ओर पर रास्ता रोककर नाववाले ने उनसे आकर पूछा—'नाव पर चलिहौ ?'

दीपा ने गंगा की ओर देखा। वहाँ पुरुषों के साथ बैठी हुई औरतें भी नाव में सैर कर रही हैं। वे दोनों भी एक नाव में जा बैठे। माझी उन्हें बीच धारा में ले गया फिर उसने केदार घाट की ओर नाव घुमाई।

दीपा के लिए गंगा में नाव की सैर नई बात नहीं पर यह किनारा और यहाँ पर टहलनेवाले लोग अवश्य ही नए हैं। किन्तु उसे सब परिचित ही जँचते हैं। केदार घाट पर उसे कई औरतें ज़ोर ज़ोर से बातें करती और हँसती दिखाई पड़ीं। उसे जान पड़ा मानो वे सब उसकी परिचित सहेलियाँ ही हैं।

अँधेरा हो जाने पर सन्नाटा छाने लगा। घाटों पर के अभिनेता एक एक कर परदे के भीतर जाने लगे। सांख्य और न्याय पर शास्त्रार्थ करने वालों ने तर्क बंद किया। कीर्तनमंडली बहुत पहले ही भंग हो चुकी है। गोलगप्पे वाला भी अपनी दूकान समेट चुका है। अब अकेला सूरदास सबसे ऊपर की सीढ़ी पर बैठा रह गया है। जैसे वह रोज़ सवेरे वहाँ आता है वैसे ही सबसे आख़िर में जाता भी है। लोगों की भीड़ टल जाने पर ही वह आख़िरी गीत गाता है। उस समय किसी बाजे का साथ न रहने के कारण गले के साथ-साथ उसके हृदय के जिस स्तर से संगीत निकलता है उसका भी परिचय उसके गाने में मिल जाता है।

शायद, वह नाम के लिए ही सूरदास है। आँखवालों की अपेक्षा उसकी प्रकृति की पहचान और अनुभव कहीं सच्चा उतरता है। उसके गाने अधिकतर प्रकृति के अनुकूल ही हुआ करते हैं।

आज आकाश साफ़ नहीं है। चाँद के उगने की तो बारी ही नहीं, जो तारे जगमगाने के लिए उगे थे उन्हें भी बादलों ने ढँक रखा है। उनकी ही ओर घूम कर सूरदास गाने लगा—

'निशिदिन बरसत नैन हमारे......'

नाव पर से यह आवाज़ भीगी-भीगी सी लगती है; शायद उसकी प्रतिध्वनि गंगा से टकरा जाने के कारण !

गाना समाप्त होने के बाद फिर सन्नाटा छा गया। अब रह रह कर गंगा में मछलियों के छप्-छप् की आवाज़ सुनाई दे जाती है।

'अब लौट चलें !' सचिता ने माझी से डाँड़ चलाने के लिए कहा।

'नाव तो ख़ुद ही बहती जा रही है !' दीपा ने उसे रोका—उसकी इच्छा अब भी लौटने की नहीं हो रही है। वह अपने से कह रही है—

'यहीं तो सुखी हूँ—इसमें दूसरे किसी का तो कुछ बिगाड़ती नहीं।'

उस दिन से जब कभी उसकी तबीयत ऊबती है तो वह सचिता के साथ घाट पर घूमने चली जाती है। इस सैर का उसके मन पर अच्छा असर पड़ा है। पहले, घर में बंद रहने पर उसके भीतरी आनंद के एक प्रकार से श्वास ही अवरुद्ध हो चले थे। इसी कारण उसके चेहरे की स्वाभाविक प्रसन्नता भी दूर होती जाती थी। पर अब खुली हवा मिल जाने के कारण उसके हृदय का आनंद और चेहरे पर हँसी की सुन्दर रेखाएँ फिर से वापस आने लगी हैं। अब यदि किसी प्रकार का अवसाद उसे कभी घेरता भी है तो वह उसका अच्छी तरह सामना कर लेती है।

सिर्फ़ अब एक ही चर्चा बीच-बीच में कभी-कभी उसका चेहरा गंभीर बना देती है—वह है उसके पति की। वह एक ऐसी स्मृति है जिसे वह अपने को दृढ़ रखने के विचार से अपने हृदय के सबसे गोपनीय अंचल में छिपा रखना चाहती है। इसीलिये बात-चीत के सिलसिले में उस अंचल पर यदि बाहर का प्रकाश कभी पहुँच जाता है तो वहाँ सोती हुई छाया जग पड़ती है और दीपा को कुछ क्षणों के लिए बेचैन बना देती है। उसके पिता और सचिता यह जानते हैं इसलिए कभी भी उसके सामने उसके पति की चर्चा नहीं करते।

दीपा का परिचय घाट पर सवेरे नहाने आनेवाली कुछ औरतों से हो गया है। उनमें से जोगिया वस्त्र पहननेवाली एक प्रौढ़ा ब्राह्मणी को वह योगिनी माँ कहा करती है। अपने प्रति उनकी पुत्री-सी ममता देखकर दीपा ने उन्हें अपने जीवन की बहुत-सी बातें बतला दी हैं जो उसने औरों से छिपा रखी थीं। वे ही योगिनी माँ, चाहे अपनी सहानुभूति दिखाने के ख़याल से ही सही, जब उसके पति की उसे याद दिला देती हैं तो उसके चेहरे पर से प्रसन्नता उस दिन के लिए विलीन हो जाती है। अपने को बहुत समझाने बुझाने पर ही उसका मन स्वाभाविक स्थिति में आता है। बार-बार ज़ोर देकर उसे अपने मन से कहना पड़ता है—'न, न, अभी दुर्बल बनकर अपने को नष्ट करने का मुझे अधिकार नहीं है। धैर्य! धैर्य नहीं है तो मैं बरबाद हो जाऊँगी।'

परन्तु, एक दिन उसके उस धैर्य की भी कठिन परीक्षा का अवसर आ पहुँचा।

रामलीला के सिलसिले में उत्सव का दिन है। सूर्यास्त हो जाने पर भी घाटों से भीड़ टल नहीं रही है। नाववाले अब भी पुकार रहे हैं—'रामनगर चलिहौ हो!'

दीपा को भी उसके पिता ने सन्चिता के साथ रामनगर जाने की अनुमति दे दी है पर दशाश्वमेध घाट पहुँचकर वह हिचकने लगी। रामनगर की ओर की गङ्गा इस समय धुएँ से ढकी रहस्यमयी दीख रही हैं। वहाँ उसे कुछ ऐसा आभास होता है जिससे वह भय खाती है। सन्चिता से परामर्श करने के बाद उसने घाट ही घाट शिवाले तक जाकर वहाँ से नाव लेना निश्चित किया।

आज की भीड़ में शहरवालों की अपेक्षा गाँववालों की ही संख्या अधिक है। औरतों और बच्चों के शरीर के कपड़े अन्य दिनों की अपेक्षा

अधिक चटकीले हैं। उनकी शोरगुल की ज़बान भी देहाती है। उस भीड़ में दीपा को बहुत अपनापन दीख रहा है। सारा दृश्य उसे बचपन में देखे हुए मेलों की याद दिला रहा है। शादी के पहले उन मेलों में वह अपनी ही उम्र की लड़कियों के साथ अक्सर जाया करती थी। उन्हीं दिनों के परिचित चेहरों को ढूँढ़ने-के लिए वह अपने पास से गुज़रने वालों को ध्यान से देखती चलती है।

हरिश्चन्द्र घाट पहुँचकर वह खड़ी हो गई। भीड़ वहीं ख़त्म हो जाती थी। उस घाट पर आज भी चिताएँ जल रही हैं। उस रोशनी में घाट काफ़ी दूर तक चमक जाते हैं। उसी चमक में दूर पर के लोगों के चेहरे भी पहचाने जा सकते हैं।

अभी रामनगर जानेवाली कोई नाव नहीं। इंतज़ार में वहाँ जाने वाले कुछ यात्री खड़े हैं। उन्हीं यात्रियों में सचिता का एक परिचित सहपाठी निकल आया। अभी कई दिन पहले उससे भी सचिता ने रविशङ्कर का पता लगाने के लिए कहा था। इस समय देखा देखी होते ही उसने कहा—

'तुम ख़ूब मिले, जिनका तुमने पता लगानेके लिये कहा था'—उसने शिवाले की ओर उँगली दिखाते हुए कहा—'वह देखो! वहाँ बैठे हैं।'

दीपा की भी दृष्टि उधर गई -

गङ्गा से दो सीढ़ी ऊपर गेरुआ वस्त्र पहने एक संन्यासी बैठे हैं। मुँह उनका गङ्गा की ओर है। दीपा जहाँ खड़ी है उधर से उनके मुँह का सिर्फ़ पार्श्व-भाग दिखाई देता है। उसीसे उनके गोरे रंग, सुडौल चेहरे और गंभीर-प्रकृति का अनुमान लगाया जा सकता है। इस समय वे ध्यान की मुद्रा में हैं।

सचिता उनके उठने तक प्रतीक्षा करना चाहता था। वह अपने साथी से उनके रहने का ठिकाना पूछने लगा पर दीपा अपनी दृष्टि

उधर से हटा नहीं पाई। उसने पहिचान लिया है। उसके पाँव अनायास ही उधर बढ़ने लगे। जिस सीढ़ी पर उसके स्वामी का पाँव था उसके एक सीढ़ी नीचे उतरकर उसने घुटने टेककर उन्हें प्रणाम किया।

'ना, ना!' उसकी ओर देखे बिना ही अलग हटते हुए वे कहने लगे—'मैं साधु नहीं! मुझसे मिन्नतें न माँगो!'

दीपा ने फिर भी उन्हें नहीं छोड़ा। उसकी वाक्-शक्ति लुप्त-सी हो गई थी। पर उसकी आँखों के कई अश्रु-कण उनके पाँवों पर जा टपके और ध्यानमग्न रहना उनके लिए कठिन हो गया। उन्होंने अपने पाँव खींच लिए। उसके मुँह के सामने झूलता हुआ आँचल भी खिसक गया। अपने को सम्हालने की सुधि उसे नहीं रही।

उनकी आँखें खुलीं। उन्होंने भी पहचान लिया। पाँव से जोरों का उसे झटका लगा। अपने को छुड़ाते हुए उन्होंने कहा—

'दूर हट! कलंकिनी!'

फिर बिना उसकी ओर देखे ही वे एक ओर चले गए।

झटके के कारण उसके पाँव काई लगी सीढ़ियों से फिसल गए। वह गंगा में जा गिरी।

संयोग से, वहाँ छाती भर से अधिक पानी नहीं है। वह फिसलकर और भी नीचे जाना चाहती है। दाँतों पर उसने दाँत कसकर दबा रखे हैं। उसकी मामूली सिसक भी बाहर नहीं निकल पा रही है।

ऊपर की सीढ़ियों से वह दिखाई भी नहीं पड़ती। यदि किसी की दृष्टि उधर पड़ी भी तो उसने उसे स्नान करने के लिए ही गंगा में खड़ा समझा।

डुबकी लगाने के लिए वह तनकर खड़ी हुई पर उसे अपना शरीर एकाएक बहुत भारी मालूम पड़ने लगा।

इस भार को अपने साथ घसीटकर गंगा में बहा ले चलने की उसकी हिम्मत नहीं हो रही है। उसने आँखें मूँद लीं।

वह ज्ञानशून्य सी हो गई ।

और एक सीढ़ी नीचे उतरने के लिए उसके पाँव फिसलना ही चाहते हैं । वह डाँवाडोल हो रही है । उसके हाथ भी ऊपर उठ आए ।

सचिता की दृष्टि से एक क्षण पहले ही वह ओझल हुई है । वह सीढ़ियों पर छलाँग भरता हुआ वहाँ आ पहुँचा । उसने जल के ऊपर उठे हाथ पकड़ लिए फिर उन्हें ऊपर खींचते हुए कहा—

'नहीं माँ ! प्राण देने का तुम्हें अधिकार नहीं ! घर लौट चलो !'

योगिनी माँ

आज शरत् पूर्णिमा है। बीच गंगा में चाँद झिल-मिल कर रहा है। उसके चमकते मंडल पर डाँड़ चलाती हुई नावें निकल जाती हैं। पानी के नीचे से झाँकते हुए प्रतिबिंब के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। नावों के दूर निकल जाने पर प्रतिबिंब फिर गोल और पहले जैसा पूर्ण बन कर झिलमिल करने लगता है।

कई पहर रात बीत गई है, फिर भी सैर करनेवालों की नौकाएँ घाट से दूर-दूर ही भागती चल रही हैं। आज जान पड़ता है जैसे सारी रात जागते रहने का संध्या ने निश्चय कर लिया है। अंधकार में अपना मुँह छिपाए बिना ही वह इस चराचर जगत् को उषा के हवाले कर देगी। उसके जागरण ने ही विहार करनेवालों का समय-ज्ञान भी भुला दिया है। उन्हें अपने सामने जीवन, यौवन, आनंद बिखरा दिखाई देता है। मालूम पड़ता है जैसे उसे बटोर रखने के लिए ही सैर में निकले हुए लोग कोलाहल कर रहे हों।

उनकी हँसी दीपा के घर तक पहुँचती है। जिसका उसे विश्वास नहीं होता। अपने सामने का दृश्य उसे स्वप्न-सा प्रतीत होता है। उस स्वप्न-सा जिसका एकमात्र ध्येय भुला-बहका कर ठगना मात्र रहता है। विहार करनेवालों की ओर देखकर वह मन-ही-मन कहती है—'ये हँसते हैं, खेलते हैं और अपने उसी हँसी खेल के द्वारा अपना सबसे बड़ा फ़र्ज़—एक-दूसरे को वेदना पहुँचाते रहना—अदा करते हैं।'

पानी की छप्-छप् से भी अब वह चौंक उठती है। उसे जान पड़ता है विहार करनेवालों ने किसी को गंगा में ढकेल दिया है। उसे आप-बीती याद आती है—'उन्होंने मुझे ढकेल दिया। उनकी दृष्टि में मैं कलंकिनी हूँ फिर भी वे कितने अच्छे हैं। वे त्यागी-विरागी गिने जाते हैं। सब लोग उन्हें अच्छा गिनते, उनकी प्रशंसा करते और उन्हें प्रणाम करते हैं। जब वे ही वैसे हैं तो दूसरों की निष्ठुरता का क्या ठिकाना?' उसके ख़याल से अच्छे से अच्छे आदमियों की स्वाभाविक प्रवृत्ति यही होती है कि जिस पर उनका अधिकार हो उसे गड्ढे में ढकेल दिया जाय! इसी में उन्हें आनंद आता है।

अब उसे दुनियाँ का सारा सिलसिला ही अनुचित ढंग पर रचा हुआ दिखाई देता है। यहाँ सहृदयता नाम की कोई चीज़ नहीं; आद-मियों का स्वभाव ही निष्ठुरता और क्रूरता से तैयार किया गया है।

उसके स्वभाव में अद्भुत परिवर्त्तन आ गया है। अब उसकी झुँझलाहट भी बहुत अधिक बढ़ जाती है। अपने-पराए सब उसे कोसते और कलंकिनी कहकर पुकारते दिखाई देते हैं। यही आवाज़ उसके अपने हृदय से भी टीस की भाँति निकलती है। आदमियों से लेकर देवताओं तक—सभी पर उसे ग़ुस्सा आने लगा है।

'तुमने मुझे बचाया क्यों?' वह सचिता पर नाराज़ होने का कोई न कोई बहाना निकालकर कहती है—'और कुछ भुगतने के लिए ही न?'

बाबा विश्वनाथ के न्याय पर से भी उसका विश्वास उठता जा रहा है। अपने पिता के साथ जब वह उनके मंदिर में जाती है तो पिता के सिखलाए हुए पूजा के मंत्र जपने के बदले बाबा विश्वनाथ से पूछती है—'तुम तो जानते हो ! मैंने कोई अपराध नहीं किया फिर मैं कलंकिनी क्यों ? तुम्हारे यहाँ न्याय नहीं ! फिर तुम्हारी भक्ति किसलिए ? पूजा किसलिए ?'

इस गहरे संघर्ष की रेखाएँ उसका चेहरा भी विकृत बना देती हैं। आईने पर दृष्टि पड़ती है तो उसमें दीखनेवाले चेहरे को स्वयं धिक्कारती हुई कहती है—'कलंकिनी !' अगले ही क्षण गुस्से से उसके दाँत किटकिटाने लगते हैं और दबा रखने पर भी हृदय से आवाज़ निकल पड़ती है—'डूब मर !'

अपनी इसी आवाज़ की प्रतिध्वनि वह अपने चारों ओर सुना करती है।

अपने को धिक्कारनेवाली आत्मा की इस आवाज़ से छुटकारा पाने के लिए वह गंगा-किनारे जाती है पर पानी तक पहुँचते-पहुँचते उसके पाँव बेतरह काँपने लगते हैं। मुश्किल से वह दो सीढ़ियाँ नीचे उतरती है। आगे पाँव बढ़ाने के पहले ही वह क्लांत होकर बैठ जाती है।

फिर, वह घाट सूना नहीं रहता। योगिनी माँ दीपा के पीछे ही पहुँचती हैं। इधर, कई दिनों से, दीपा जब गंगा किनारे आती तो वे भी उसके पीछे-पीछे छाया की तरह पहुँच जातीं। उसका उतरा हुआ फीका चेहरा देखकर ही वे जान जाती हैं कि वह बहुत बड़ा क्लेश पा रही है। वैसी परिस्थिति में उसके द्वारा कोई भी भयानक कार्य संभव होने की उन्हें आशंका होने लगती है। इसीलिए वे दीपा को अपनी गोद में बिठाकर उस व्यग्रता का कारण पूछती हैं।

एक बार पहली सीढ़ी के नीचे उतरते-उतरते योगिनी माँ ने उसे पकड़ लिया। पूरी ताक़त लगाकर वे उसे उठाकर सूखी सीढ़ियों पर ले आईं।

'आज तुझे कहना ही पड़ेगा!' उन्होंने उसे अपनी छाती से लगाते हुए पूछा—'तू मुझे बतलाती क्यों नहीं? तुझे क्या कष्ट है?'

दीपा ने कुछ उत्तर नहीं दिया। योगिनी माँ अपने आँचल से उसका मुँह पोंछने लगीं। वह अपना मुँह छिपाये रखना चाहती थी, पर आज सफल नहीं हुई। योगिनी माँ ने उसका सिर अपनी गोद में लेकर उसे अपनी ओर देखने के लिए बाध्य किया। दीपा के होंठ फड़कने लगे—उसका सारा शरीर काँपने लगा।

'किसने तुझे सताया है, बेटी?'

वह सिसकती ही रही। बहुत मजबूर किए जाने पर वह कहने लगी। उसने अपने को अभागिन बतलाया। शिवाले पर बीती उस दिन की बातें भी बतलाईं। यह भी कहा कि उसे लोग कहते हैं—'कलंकिनी!'

'कलंकिनी!' योगिनी माँ ने ठीक उसकी आँखों में देखते हुए कहा—'यदि तू कलंकिनी है तो सारी दुनियाँ ही कलंकिनी है। उस कलंकिनी कहनेवाले को ही किसने जन्म दिया? तेरी जैसी किसी नारी ने ही तो! नारी-जन्म ग्रहण करने से ही यदि हम कलंकिनी हैं तो मनुष्य की सृष्टि भी हमसे ही होती है, इसलिए इस मानव समाज में कलंक से मुक्त कोई चीज़ रह ही नहीं जाती। जैसे हम इस अपवाद को अस्वीकार नहीं कर सकतीं वैसे ही वे भी—संन्यासी, वेदांती, चाहे जो भी हों, उस कलंक से ही अपना उद्भव क्योंकर अस्वीकार कर सकते हैं?'

इस दलील से भी दीपा का दुख दूर नहीं हुआ। आँसू उसके कपोलों के साथ-साथ योगिनी माँ का आँचल गीला करते रहे। अपना मुँह हाथों से छिपाते हुए उसने कहा—'सचमुच इस दुनियाँ में मैं सबसे बड़ी अभागिनी हूँ।'

अपना मुँह उसने योगिनी माँ की गोद में छिपा लिया। उसके सिर पर हाथ फेरते हुए योगिनी माँ उसे अपने जीवन के कटु-अनुभव सुनाने लगीं—

'तेरे साथ तेरे पति ने जो कुछ किया है उसे तो मैं उनकी दया ही कहूँगी। परंतु मेरे साथ उनका जैसा बर्ताव हुआ है उसकी कठोरता की तू कल्पना भी नहीं कर सकती! जिस समाज में मैंने जन्म लिया है उसके नियम हमारा गला घोंट कर मारनेवाले हैं। मैं जब छः साल की थी उसी समय पिता ने मेरी शादी ठीक की। जिनसे मेरी शादी होनेवाली थी, वे लगन के थोड़ा पहले बीमार पड़ गए। सावन की बढ़ी हुई गंगा पारकर शुभ लग्न के समय कोई पहुँच नहीं सका। पुरोहित महाशय ने शास्त्रों की व्यवस्था बतलाई कि यदि उसी लग्न में मेरी शादी न की गई तो जीवन पर्यंत मुझे कुमारी ही रहना पड़ेगा और मुझे हमेशा के लिए समाजच्युत कर दिया जायगा। परन्तु उस रात में पात्र मिले तो कहाँ? मुझ पर और मेरे पिता पर असीम कृपा रखने के कारण पुरोहित ने मेरी शादी अपने परिचित एक चालीस साल के दमा से पीड़ित गँजेड़ी से कर दी। मैं माँ की गोद छोड़कर कहीं जा नहीं सकती थी। मुझे उनका चेहरा देखकर ही डर लगता था। मैं चिल्ला उठती थी। मुझे ज़बर्दस्ती गोद में उठाकर वे अपने घर ले गए पर वहाँ भी मैं चिल्ला-चिल्लाकर प्राण त्याग देने के लिए तैयार रही। तब उन्होंने यह कहकर कि 'इसका जन्म ऐसी लग्न में हुआ है कि जो इसका पति होगा उसे ही यह चबा डालेगी' मुझे फिर पिता के घर भेज दिया। पिता को उन्होंने डरा दिया कि फिर कभी यदि वे मेरा मुँह देखेंगे तो उन्हें भी कलंक लगेगा। खैर, माँ के हृदय में मेरे लिए थोड़ी ममता थी। जब तक वे ज़िन्दा रहीं, मैं उनके ही पास रही। किसी पर्व-उत्सव वा पड़ोसी के घर शादी-ब्याह जैसे ख़ुशी के मौक़ों पर मुझे घर में बंद कर दिया जाता था जिसमें मेरे चेहरे पर दृष्टि पड़ने से किसी

का अनिष्ट न होने पावे। मेरे बड़ी हो जाने पर इस मामले में और भी सख्ती की जाने लगी। मेरा हाथ पकड़ने और माँग में सिंदूर डालने के पाप से मुक्त होने के लिए मेरे 'पति' ने और एक शादी कर ली। मेरी हालत किसी कोढ़ी, अपाहिज से भी बदतर बना दी गई। तेरी जितनी उम्र में मेरी ज़िन्दगी सिर्फ़ अपने लिए ही नहीं बल्कि समाज, संसार सबके लिए भार बन गई थी। घृणा करने के सिवा मुझसे किसी को और कोई प्रयोजन नहीं रह गया था। ऊबकर मैं गंगाजी के अर्पण हो जाने के और कोई चारा अपने लिए नहीं देखती थी। इसी इरादे से नदी किनारे गई भी! पर वहाँ एक बौद्ध भिक्षु ने मुझे बचा लिया। उनसे भी मैंने प्रश्न किया था—'और जी कर क्या होगा? मैं तो हमेशा ही कोढ़ी-अपाहिजों से बदतर बनी रहूँगी!'

उन्होंने कहा—'नहीं, तेरा जीवन भी पलटा खाएगा! तेरे द्वारा भी संसार का कल्याण होगा!'

दीपा बड़े ध्यान से सुन रही थी। जीवन के पलटा खाने की बात सुनकर उसका रोम-रोम सिहर उठा। मालूम पड़ा जैसे वह भी अपने शरीर में उसी क्षण कोई भारी परिवर्त्तन आ जाने की आशा करने लग गई हो।

'फिर जीवन सचमुच में ही पलट गया?' उसने पूछा।

'हाँ, अपने यहाँ की परिस्थिति में जितना कुछ पलट सकता था। भंते (भिक्षु) ने ही मुझे जोगिया वस्त्र पहन लेने के लिए कहा। उस वेष में जब मैं पहले-पहल उनके सामने गई तो उन्होंने कहा—'आज से तेरा नया जन्म हुआ! अपने जीवन से और घृणा न कर!' मैं उनके साथ साथ ही काशी आई। यहाँ अपनी कुटिया उन्होंने मुझे रहने के लिये दे दी और स्वयं कुशीनारा में विहार तैयार कराने चले गए। यहाँ आ जाने पर सचमुच ही अब मैं सुखी हूँ। मैं जानती हूँ कि मैं क्या हूँ, दूसरों के कहने की अब मुझे परवाह नहीं!'

'मेरा जीवन भी कभी पलटेगा, माँ?'

'ज़रूर पलटेगा। तू पुण्यसलिला गंगा को ही देख—बरसात में ये कितनी गँदली दिखाई देती थीं ! पर अब वे ही कैसी स्वच्छ हो गई हैं ! अब तक संघर्ष के कारण जो चिह्न तेरे चेहरे पर आ गए हैं, वे दूर हो जाएँगे। बेटी, यह कभी न भूल कि तू भारतीय नारी है। अग्नि-परीक्षा से तुझे गुज़रना ही पड़ेगा लेकिन तू उससे चमकती हुई निकलेगी। धैर्य ! बेटी, धैर्य रख !'

उसी दिन से थोड़ा अँधेरा रहते गंगाजी जाते समय योगिनी माँ अपने साथ ही दीपा को स्नान के लिए ले जाती हैं। उनके स्नान-पूजा कर चुकने पर भी सूर्य निकलने में थोड़ी देर रहती है। प्रति दिन सूर्य को पहला नमस्कार करने के विचार से वे सीढ़ियों पर बैठ जाती हैं। यही समय होता है जब योगिनी माँ दीपा के हृदय की वेदना और उदासी दूर करने की कोशिश किया करती हैं।

दीपा की समझ में उनकी दलीलें नहीं आतीं पर अपने तथा अपने परिचितों के विषय में योगिनी माँ जो कहानियाँ सुनाती हैं उनकी गहरी छाप उसके मन पर पड़ती है और उससे हृदय आलोकित होकर हलका मालूम पड़ने लगता है। योगिनी माँ के खींचे हुए वे चित्र दीपा के अपने जीवन का दृष्टिकोण ही पलट देते हैं। उनसे वह यहाँ तक प्रभावित हुई कि एक दिन उसने योगिनी माँ से कहा—

'विवाहित की अपेक्षा यदि मैं जीवन भर कुमारी ही रह जाती तो वह जीवन शायद इस समय की अपेक्षा कहीं सुखकर होता !'

उसके भोलेभाले मन से निकले हुए विचारों पर हँसते हुए योगिनी माँ ने कहा—'जिस समाज में तूने जन्म लिया है पहले तो वहाँ यह बात संभव ही न थी। यदि मान भी लूँ कि तू किसी सीमा तक समर्थ होती तो भी तेरा उस अवस्था का संग्राम आज की अपेक्षा कहीं जटिल और भयानक रहता। अपना समाज किसी रमणी के कुमारी रह जाने का विचार भी सहन नहीं कर सकता। अभी तो तुझे अपने पिता के घर में आश्रय भी मिल

गया पर सयानी होकर यदि कुमारी रह जाती तो समाज ही अपने ऊपर इस बात की ताक़ीद का भार ले लेता कि तुझे कहीं भी आश्रय न मिले। सिर्फ़ शरीर क़ायम रख पाने भर के लिए तेरा संग्राम वह समाज इतना जटिल बना देता कि तेरे सामने सिवा अपना शरीर बेचकर कुछ दिनों तक पेट भरने के और कोई चारा ही नहीं रह जाता। उस दशा को शायद जीवन का भी नाम नहीं दिया जा सकता। मालूम नहीं कितने तरह के रोगों से जर्जरित वैसी अवस्था में पड़ी स्त्रियाँ किसी तरह प्राण अँटकाए रखती हैं। अकेली स्त्रियों का जीवन किस सीमा तक भार बन जाता है, इसकी तू कल्पना ही नहीं कर सकती। हम जब समाज का सब क़ानून दिल से मानती हुई चलती हैं, बड़े-से-बड़े अत्याचार होने पर सिर उठाने की कौन कहे, मुँह तक नहीं खोलतीं, तब भी हमें इतना भुगतना पड़ता है—आज का हृदयहीन समाज हमें जीवित रहने का भी अधिकार नहीं देना चाहता; फिर जब हमारे सभी काम उसकी इच्छा के विरुद्ध होंगे उस समय उसके ग़ुस्से की क्या कोई सीमा रह जाएगी? नहीं, नहीं, तेरी हालत कुमारी रह जाने पर आज की अपेक्षा कहीं बदतर बन गई होती!'

'तो क्या स्त्रियों के लिए इतनी सब तकलीफ़ों से बचने का और कोई दूसरा रास्ता ही नहीं? हमें सिर्फ़ नारी-जन्म ग्रहण करने से ही हमेशा धिक्कार, अत्याचार और ग्लानि बर्दाश्त करते रहना पड़ेगा?'

'भंते कहा करते थे कि हमारे देश की औरतों के ऊपर जितने अत्याचार होते हैं उनकी जड़ में हमारे देश की ग़ुलामी है। हमारे यहाँ के मर्द ही दास बन जाने के कारण इस हद तक अपनी मनुष्यता से हाथ धो चुके हैं कि वे स्वयं ही बाहर मुँह दिखाने लायक़ नहीं रहे। उनके अपने जीवन में सुख नहीं, इसलिए वे दूसरों को भी उससे वंचित रखना चाहते हैं। उनमें जितनी भी अपनी ताक़त अवशेष रही है उसे वे दूसरों को जीवित रहने के अधिकार से वंचित करने में ही लगाते हैं। इस समय हमारे यहाँ के पुरुष समाज की सबसे बड़ी लड़ाई सौन्दर्य

और जीवन के ही विरुद्ध चल रही है। इन दोनों की सृष्टि करने तथा जीवित रखने में हम स्त्रियों का ही बहुत बड़ा हाथ रहता है, इसीलिए पुरुष समाज ने हमारे विनाश के लिए संग्राम छेड़ रखा है। इसके परिणामस्वरूप हमें बहुत भुगतना पड़ रहा है; हममें से बहुत सी नष्ट भी हो जाएँगी, पर सौन्दर्य और जीवन बचे ही रहेंगे! ये दोनों ही शाश्वत-धर्म के अंतर्गत हैं इसलिए बड़े से बड़े अत्याचार इन्हें नष्ट नहीं कर सकते।'

'पर मैं तो नष्ट हो जाऊँगी!'

'तू थक गई है बेटी! जटिल-संग्राम ने तेरी बहुत सी शक्ति नष्ट कर दी है फिर भी तू नष्ट नहीं होगी। हम स्त्रियों में सर्वनाश का सामना और उसका उपहास करते रहने की अद्भुत शक्ति है। तुझे प्रकृति ने एक ऐसी वस्तु सृजन करने की ताक़त दी है जिस पर सौन्दर्य और जीवन के साथ साथ मनुष्य समाज का अस्तित्व तक अवलंबित है। उसी सृष्टि के सिलसिले में दूसरों की कौन कहे, स्वयं औरतें भी अपने ऊपर किए गए सब अत्याचार, सब धिक्कार, अपनी सब ग्लानि भूल जाती हैं।'

उनके सामने सूर्य का बिम्ब निकल आया था। उन्हें नमस्कार करके वे घर लौटने को उठ खड़ी हुई। सीढ़ियों पर ऊपर चढ़ते चढ़ते योगिनी माँ ने कहा—'जानती है तू औरतों की वह कौन सी सृष्टि है जिससे उनके सब दुख भूल जाते हैं?' दीपा के कान के पास मुँह ले जाकर धीमे परंतु तार की झंकार के समान काँपते स्वर में योगिनी माँ ने कहा—संतान।'

योगिनी माँ अब दीपा के घर अक्सर आती हैं। उसका मन बहलाने के लिए वे कभी कभी दो-चार किताबें भी लेती आती हैं। उनमें कहानियों की किताबें वे उसे पढ़कर सुनाया करती हैं।

शरत् बाबू की कहानियाँ वह बड़े चाव से सुनती है। उनके स्त्री

पात्रों की दुख-गाथाओं को सच्ची घटनाएँ मानकर वह मुँह फिरा लेती है और कहती है—'बस...बस...अब रहने दो!' फिर अपने को सम्हाल कर पूछती है—'तब उसका क्या हुआ?' उन पात्रों ने अपने दुख से बचने के लिए यदि कभी कोई रास्ता अपनाया होता तो वह अपने निजी संकट से निकलने के हेतु वैसे ढंग के रास्तों पर विचार करती; पर उनमें कोई भी उसे उपयुक्त नहीं जँचता। उनकी सब कहानियाँ सुन लेने पर उसने कहा—'हाँ सब सच है! हमारी तकलीफ़ें उसी ढंग की हैं। मैं उन्हें ख़ुद भुगत रही हूँ पर सिर्फ़ आँसू बहाते रहने से ही तो उनसे किसी को मुक्ति नहीं मिलती?'

राजपूत रमणियों की वीर गाथाओं ने भी उसे बहुत प्रभावित किया है। इस शिक्षा का उसकी बुद्धि की अपेक्षा उसकी विवेक शक्ति पर अधिक प्रभाव पड़ा है। अब अपनी तकलीफ़ों का सारा दोष अपने पति पर जब कभी वह मढ़ती है तो तुरत ही उस दलील की सचाई में उसे शंका होने लगती है। वह अब भी तकलीफ़ पाती, उदास होती और गुस्सा करती है, पर तुरंत ही उसका दिल उसे सतर्क कर देता है। वह पति के दोषों की बात भूल जाती है और इस बात पर विश्वास करने की कोशिश करती है कि उसके स्वामी की देशसेवा तथा उनके दूसरे आदर्शों के कार्यरूप में सफल होने पर उसकी जैसी स्त्रियों की सब तकलीफ़ें दूर हो जाएँगी।

'संभव है उन्होंने जो किया वही ठीक था!' एक दिन उसके मुँह से निकल पड़ा पर तुरंत ही वह पूछने लगी—'लेकिन...उसके लिए क्या मुझे इतना सताना भी ज़रूरी था?'

रवीन्द्रनाथ की कविताएँ सुनने पर वह कुछ और ही हो जाती है। उनकी कविताओं की झंकार ही उसे सांत्वना देने के लिए आई जान पड़ती हैं। वे उसकी आँखों के सामने छम्-छम् कर नृत्य करती आती हैं। थोड़ी देर उनका 'जीवन-नृत्य' चलता है तब वे अपने अलंकार

एक एक कर शरीर से उतार देती हैं; तुरत ही उन्हें तोड़-फोड़कर अपने पाँवों तले कुचल डालती हैं। फिर अपने चारो ओर की दुनियाँ पर तिरस्कार की एक दृष्टि डालकर ऊपर उठने लगती हैं। बादलों में जाकर वे अंतर्द्धान हो जाती हैं।

दीपा दीर्घ निःश्वास लेती है।

श्यामा और वज्रसेन की कहानी ने उसके अंतःस्तल को हिला दिया है। थोड़ी देर के लिए वह अपने को ही श्यामा समझने लगती है। वह रास्ते की ओर देख रही है। सहसा योगिनी माँ कविता सुनाने लग जाती हैं। वह सिहर उठती है।

वज्रसेन! महेन्द्र निंदित कांति! नगरपाल उसे बंदी करके कठिन ज़ंजीरों से जकड़कर चोर की भाँति लिए जा रहे हैं। श्यामा उसे छुड़ाने के लिए दौड़ पड़ती है।

दीपा अपने को ही वज्रसेन को बंदीगृह से छुड़ाकर लाती हुई देखती है।

दोनों नाव पर सवार हो गङ्गा पार करना चाहते हैं। नौका स्रोत के साथ पूरे वेग से भागती है किनारे से सब संपर्क विच्छिन्न कर—दोनों ओर वही सुपरिचित गङ्गा-तट—श्यामल आम्रकुञ्ज। वहाँ पक्षी आनन्दोत्सव गान कर रहे हैं। (अभी उस दिन ही तो दीपा ने वह गान सुना है) वहीं तीर के एक उपवन में संध्या-पवन ने उनकी नौका लगा दी।

'क्षणिक शृंखला से मुक्त कर तूने मुझे अनन्त शृंखला में बाँध लिया है–' श्यामा को आलिंगन कर वज्रसेन ने काँपते स्वर में कहा—'तूने मेरे लिए जो कुछ किया है अगर जान सकूँ तो यह जीवन देकर उसका परिशोध दूँगा।'

'तुम्हारे लिए ही'—श्यामा कहती है—'तुम्हारे लिए ही मैंने सब कुछ किया। मेरे ही कहने से, मेरे व्यर्थ प्रेम में अधीर उस युवक ने तुम्हारे बदले अपने प्राण दिए।'

क्षीण चंद्र अस्त हुआ—नीरव अरण्य—पक्षी भी स्तब्ध ! वज्रसेन का बाहुपाश शिथिल पड़ा। वह पत्थर की मूर्ति बन गया।

वह मूर्ति दीपा को उस दिन गङ्गा-तट पर खड़े अपने पति की याद दिलाती है। वज्रसेन के पाँवों पर माथा रखकर श्यामा छिन्न लता के समान लोट जाती है। दीपा अपने को ही लोटती देखती है।

'कलंकिनी !' वज्रसेन श्यामा को ढकेल देता है। दीपा आँखें मूँद लेती है। योगिनी माँ बिना उसकी ओर देखे ही कविता पढ़ती जाती हैं।

'जा ! जा ! लौट जा ! मुझे छोड़ !' वज्रसेन कहता है।

नारी क्षण भर माथा नीचे किए मौन रहती है। तब भूमि में माथा टेककर उसे प्रणाम करती है और तीर पर जा उतरती है। फिर धीरे-धीरे अँधेरे वन का रास्ता लेती है। उसी में विलीन हो जाती है। वैसे ही, जैसे क्षणिक अपूर्व स्वप्न ! नींद टूटने पर रात्रि के अंधकार में—

वह अपने को ही गंगा में फिसलती देखती है। पानी के नीचे जा पहुँची है। वहाँ घनी सिवार है—ठीक उस अँधेरे अरण्य की तरह। उसीमें उसके पाँव अटक रहे हैं। रवीन्द्रनाथ की श्यामा की भाँति वहीं वह अंतर्द्धान होना चाहती है। उसकी अपनी ही साड़ी गले की फाँसी बन गई है। वह कसती जाती है। उसका निःश्वास बंद हो चला है। वह उतलाती है। ऊब-डूब। क्षणिक छटपट। तब अचेत।

गान

'मिलने बाजिबे बाँशी...'

कोई गा रहा है—काँपती हुई आवाज़ में—कहीं बहुत दूर पर। गाते गाते वह दूर हटता जाता है, दृष्टि के सामने कभी भी नहीं आता। जिधर से उसकी आवाज़ आती है उधर दृष्टि फेरते ही वह उस ओर से हट जाता है। उसकी आवाज़ दूसरी ही दिशा से आने लगती है। दृष्टि के चकित होकर पूछने पर उत्तर मिलता है—'यहाँ नहीं, यहाँ नहीं, और कहीं!'

मालूम नहीं कितनी बार उन्हें यह गीत सुनाई दिया है। अवश्य ही उसका संबंध उनकी किसी ख़ास स्मृति से है। वह स्मृति उनके जीवन में विशेष महत्व रखती है शायद इसीलिए यह गीत भी उनके लिए अमिट बन गया है।

यह गीत जब रविशंकर के मन में गूँजने लगता है तो उसके साथ ही

उन्हें अपने जीवन की कई घटनाएँ सिनेमा के चित्रों की भाँति स्मृति-पट पर दिखाई देने लगती हैं। उस समय वे अपने आपको भी उसका ही एक पात्र बना हुआ देखते हैं। तब वे अपने सारे जीवन पर ही एक दृष्टि डालने लगते हैं।

क्रान्तिकारी अभियोग में पकड़े जाने से पहले की उनकी कहानी साधारण है। उनके माता-पिता बचपन में ही जाते रहे थे पर अपने शिक्षकों की कृपा से उनकी पढ़ाई का सिलसिला बंद नहीं हुआ। कालेज की पढ़ाई समाप्त करने पर उन्हें विदेश में अध्ययन करने का वज़ीफ़ा भी मिला पर उसी साल उनकी शादी हुई। दीपा का आकर्षण और मोह बहुत ज़बर्दस्त था। लंबे अरसे के वियोग के लिए वह किसी प्रकार तैयार न हुई। स्वयं उनके लिए भी उन दिनों सुखी पारिवारिक जीवन ही आदर्श था।

कालेज से निकलते ही योग्यता के कारण उन्हें वहीं अध्यापन का कार्य मिला। उस समय तक वे किसी राजनैतिक दल में शामिल नहीं हुए थे। अपने विद्यार्थियों को भी वे राजनीति से अलग रहने की ही सलाह देते थे। देश तथा समाज की उन्नति का एक मात्र रास्ता उन्हें शिक्षा के प्रसार में ही दिखाई देता था। अपने शिक्षकों के ऋण से उऋण होने के लिए उन्हें भी जो विद्यार्थी योग्य जँचते उनकी वे यथा संभव सब तरह से मदद किया करते थे। इसी मदद के सिलसिले में एक ऐसा मौक़ा आ गया जो उनके जीवन का प्रवाह ही बदल देने का कारण बना।

उनका सदा प्रसन्न रहनेवाला एक प्रिय छात्र था—निताई। अब भी उसकी याद आने पर उनकी आँखों के सामने उस भोले-भाले बालक का सुन्दर चेहरा नाच उठता है। साथ ही सुनाई देने लगती है उसकी सुरीली आवाज़। युवावस्था के साथ-साथ आने वाले परिवर्त्तन उसके

गले की आवाज़ में अभी नहीं आ पाए हैं। अपनी किशोरावस्था की सुरीली आवाज़ में वह बहुत सुन्दर गाता है। उसे देखकर कोई भी यही कहता कि कला की साधना के लिए ही उसने जन्म लिया है।

पता नहीं, भाग्य के किस फेर से निताई की कुछ क्रान्तिकारी विद्यार्थियों से दोस्ती हुई। उन विद्यार्थियों में से कई एक राजनैतिक रेल डकैती के सिलसिले में गिरफ़्तार किए गए। उनके दोस्त होने के नाते पुलिस ने निताई की भी गिरफ़्तारी का वारंट निकाला। वह भाग चला। कोई भी उसे आश्रय देने के लिए तैयार नहीं।

वह आया रविशंकर के पास। उन्हें उसके 'जुर्मों' से कोई सहानुभूति न थी, फिर भी वे उसकी सुरीली मीठी आवाज़ की अवहेला न कर सके। उन्होंने उसे अपने घर में आश्रय दिया। इसकी ख़बर जासूसों ने पुलिस को दे दी। उसने रविशंकर के घर पर धावा किया। अध्यापक और छात्र दोनों ही पकड़ कर जेल ले जाए गए।

मुक़दमा चला। जेल के भीतर ही कचहरी लगती। निताई को अपने निर्दोष होने पर पूरा भरोसा था। उसी के बल छुटकारा पा जाने की भी उसे उम्मीद थी। इसी विचार में काल कोठरी में बंद कर दिए जाने पर भी वह हर वक़्त गाने में ही मस्त रहता। बंद रहने के नए अनुभव में भी उसे आनंद मिलता।

फ़ैसला सुनाया गया। तीन साथियों के साथ निताई को भी फाँसी का हुक्म मिला। यह बात सबको अजीब सी लगी। लोगों ने यही अंदाज़ लगाया कि सिर्फ़ डर दिखाकर भयभीत करने के लिए ही उतनी सख़्त सज़ा सुनाई गई है। ख़ून करने की कौन कहे, निताई के हाथ में हथियार लेने की बात भी प्रमाणित नहीं हो पाई थी। फिर भी ख़ुफ़िया ने उसे षड्यंत्र में शामिल किया था और उसी जुर्म में उसे प्राणदंड की आज्ञा दी गई थी। बंदियों के वकील कहते कि अपील करने पर वे अवश्य छूट जायँगे पर उनकी अपील भी ख़ारिज हो गई।

फाँसी की सज़ा पाए दूसरे अभियुक्त सूबे के विभिन्न ज़िला-जेलों में भेज दिए गए। अब अकेले निताई ही वहाँ रह गया।

एक दिन सबेरे पानी लेने के लिए सेल (कालकोठरी) से बाहर निकाले जाने पर उसने देखा कि फाँसी की टिकठी ठीक की जा रही है। ख़ासकर उसी काम के लिए सेंट्रल जेल से बुलाया गया एक जल्लाद भी कल ही आ पहुँचा है। उसने कई क़ैदियों से अपने हाथ की सफ़ाई का ज़िक्र किया है। एक एक आदमी की फाँसी में उसे पाँच-पाँच रुपए बख़शीश मिलते हैं। अबकी बख़शीश की ख़ुशी भी वह छिपा नहीं पा रहा है।

जल्लाद ने बालू भरे बोरों को बार बार लटकाकर आदमियों के गले में पहनाए जाने वाले रस्से के ज़ोर की आज़माइश की। वह बहुत ठीक उतरा। उस कला में अपना अद्भुत कौशल देखकर उसे संतोष हुआ। एक बार वह मुसकुराया भी। उसके चेहरे पर ऐसी कोई भी विशेषता नहीं थी जिस आधार पर उसका संबंध किसी भी भयानक कार्य से जोड़ा जा सकता था। उसकी सूरत शक्ल में और सब साधारण क़ैदियों में जिस करुणा और दया का स्वाभाविक अभाव दिखाई देता है, उसी का कुछ अंश झलक रहा था।

उसकी ओर नज़र पड़ने और उसका काम देख लेने पर भी निताई ने उसका कुछ विशेष ख़याल नहीं किया। वह अपनी गुनगुनाहट में ही मस्त रहा।

अपना काम ख़त्म कर चुकने पर जल्लाद उसके पास आया। वह निताई की आँखों में देखने लगा, मानों उनका बहुत पुराना प्रिय परिचित हो। मुसकुराते हुए उसने कहा—'बाबू, आप तो बहुत अच्छा गाते हैं !'

बातचीत की भंगिमा उसकी ऐसी थी मानों निताई पर वह अपनी कृपा का बहुत बड़ा एहसान लादने जा रहा हो। फिर बख़शीश माँगने की भाँति अपना हाथ आगे बढ़ाते हुए कहा—'एक बीड़ी, बाबू !'

निताई ने उसे और एक क़ैदी से दिलवा दी। बीड़ी लेकर जल्लाद ने अपने कान पर के बालों में छिपा ली। फिर निताई की ओर बिना दृष्टि फेरे जाकर अपने काम में लग गया। निताई निश्चिंत हो गुनगुनाता ही रहा।

'तुम्हारी फाँसी की सज़ा बहाल रह गई है—' शाम को दो अफ़सरों ने आकर उसे सूचना दी—'कल तुम्हें लटकाया जाएगा।'

'क्यों?' ताज्जुब दिखाते हुए निताई ने पूछा—'मैंने क्या किया है? कैसी फाँसी? किसे?'

बिना उसका कोई उत्तर दिए दोनों अफ़सर सेल के सीखचों को थर्राते जिधर से आए थे उधर ही लौट गए।

उन सीखचों के भीतर दिन का प्रकाश चेष्टा करने पर भी प्रवेश नहीं कर पाता। बंदी के व्यवहार की तीनों चीज़ें—कंबल, लोहे के कटोरे और टोकरी का रंग काला है। उस खोह में डाल दिए जाने पर गोरे आदमी को अपने निजी शरीर का रंग भी एक क्षण में ही काला बन गया दीखता है। कालेपन से उसका छुटकारा नहीं। यदि वह भागकर विचारों की दुनिया में विचरण करने की सोचता है तो वहाँ भी उसे घना अंधकार ही मिलता है।

रोज़ शाम को एक संतरी उन सीखचोंवाले दरवाज़े के पास बाहर की ओर एक लालटेन रख जाता है। उससे भी धुआँ निकलता है। थोड़ी देर में ही उसका शीशा काला बन जाता है। उसकी रोशनी में जलते अंगारे से भी कम प्रकाश रहता है। उसे ही ऊपर उठा बीच बीच में संतरी बंदी को जगाकर उसकी हरकतों की जाँच किया करता है।

वैसी ही एक कालकोठरी में उस दिन रात को निताई बड़ी रात तक भजन गाता रहा। थककर कंबल पर लेट जाने पर भी उसका गुनगुनाना बंद नहीं हुआ। बड़ी मुश्किल से उसे झपकी लगी। उसी समय

संतरी के जूतों की आवाज़ हुई। निताई उठकर खड़ा हो गया। दोनों हाथों से सीखचे पकड़ बग़ल के सेल में बंद रविशंकर से उसने पूछा—

'अभी सबेरा नहीं हुआ?'

'नहीं!' संतरी से ही उसे उत्तर मिला—'अभी तो दूसरा पहरा भी नहीं बदला है।'

'तब तो अभी भैरवी का वक़्त नहीं हुआ।' कहकर वह फ़र्श पर पड़े कंबल पर बैठ गया। संतरी लालटेन उठाकर उसे देखने लगा।

'क्यों जी—' निताई ने उससे पूछा—

'बाहर इतना अँधेरा क्यों? क्या बदली लगी है?'

संतरी बाहर की छोटी अँगनई में गया। वहाँ ऊपर आकाश की ओर देखकर उसने कहा—'नहीं, ज़्यादा नहीं! अब तो चाँदनी निकलने का वक़्त हुआ।'

'आहा! चाँदनी! कितनी सुन्दर है!' कहकर निताई अपने सेल की छत की ओर देख-देखकर गाने लगा—

'ऐखनी उठिबे चाँद आधो आलो आधो छाया ते।
काछे एशे प्रिय हाथ खानि राखो हाथे...।'

जब बहुत देर तक बुलाने पर भी वह अपने उस 'प्रिय' से नहीं मिल पाया, तब अपने ही हाथों का तकिया बना लेट रहा।

सेल के बरामदे में अभी भी अँधेरा है। राइफ़लधारी सिपाहियों का एक जत्था निताई के सेल के सामने आकर खड़ा हो गया।

'बाहर निकलो, निताई!' जेलर ने कहा—'तुम्हारे गाने का वक़्त हुआ।'

कंबल की कुटकुटी से तंग आकर वह पहले से ही उठ बैठा है। उस वार्ड के सब क़ैदियों की नींद सिपाहियों के बूट जूतों की ठपाठप आवाज़ से खुल चुकी है। सब सीखचें पकड़ खड़े हो बरामदे में देखने लगे हैं।

दोनों तरफ़ राइफ़ल ताने दो सिपाहियों के बीच निताई बरामदे में आ खड़ा हुआ। लालटेन के धुँधले प्रकाश में उसका चेहरा काले पट पर अंकित गुलाबी रंग की देवमूर्ति-सा दीखता है। मालूम पड़ता है जैसे किसी कुशल चित्रकार ने अपनी कल्पना द्वारा खूब ऊँची उड़ान ले इस संसार से परे की सरलता, सादगी और भोलेपन का सौन्दर्य लाकर उसमें अंकित कर दिया है। रविशंकर के सेल के सामने थोड़ा रुककर उसने कहा—'अब चला, मास्टर साहब !'

इतने में ही उसके पीछे आनेवाले सिपाहियों के कुंदे उसकी पीठ से भिड़ गए। उसे धक्का दे हाँकते हुए हवलदार ने कहा—'चलते चलो ! खड़े होने का हुक्म नहीं ! बढ़ते चलो !'

'जीवन भर मैं गाता ही रहा हूँ—' टिकटी पर चढ़ने के पहले निताई ने कहा—'जाने के पहले और एक गीत गा लेना चाहता हूँ।'

अभी भी कुछ क़ानूनी रस्म अदा करना बाक़ी रहा था। अधिकारियों ने उसके गाने में आपत्ति नहीं की। निताई ने एक बार अपने चारों तरफ़ दृष्टि दौड़ाई।

टिकटी के आसपास फूलों की क्यारियाँ लगी हैं। वहाँ बहुत से रंग विरंग के फूल हरी झाड़ियों के भीतर से झाँक रहे हैं। निताई एक बार उन्हें आलिंगन कर लेना चाहता है। पर उसके हाथ पाँव जकड़े जा चुके हैं।

उसने ऊपर आकाश की ओर देखा। काली बदली लगी है। वहाँ सब रहस्य से ढँका दीखता है। उधर से आँखें फिरा फिर खिले फूलों की ओर देख उसने शुरू किया। अपनी सारी ताक़त लगाकर। रवीन्द्र संगीत। यही उसे सबसे अधिक प्रिय है। पर आवाज़ काँपने लगी।

फिर वही कँपकँपी लहर का रूप धारण कर बहुत दूर की यात्रा के लिए निकल पड़ी।

और दिन इस समय सेल के फाटक थोड़ी देर के लिए खोल दिए

जाते हैं। उनमें बंद रहनेवाले क़ैदी इसी समय हवा, धूप और मेघ से मिल लेते हैं। पर आज उसमें देर हो रही है। पुराने क़ैदी इस विलंब का कारण जानते हैं। इस मौक़े पर की अद्भुत निस्तब्धता उन्हें बड़ी भयावनी लगती है।

आज उस निस्तब्धता को चीरकर आता एक गान सुनाई देने लगा है। आवाज़ की गंभीरता से मालूम पड़ता है जैसे वह किसी बहुत चौड़ी पाटवाली नदी पार कर आ रही है। कई बार दोहराए जाने पर उसके शब्द भी समझ में आने लगे हैं—

'भरशोर मूखे रेखे,
दूरे जाओ चले—'

रविशंकर अपने सेल की सीखचें पकड़े अब भी खड़े हैं। आगे की पंक्ति के शब्द संतरी के जूतों के टाप के कारण उन्हें सुनाई नहीं पड़े। पर उसके एक ओर निकल जाने पर सुनाई दिया—

'आंधार आलोर पारे
खे आदी बारे बारे।'

संतरी फिर लौट पड़ा। गान सुन पाने में बाधा पड़ जाने के कारण रविशंकर झुँझलाए, पर लाचारी थी। संतरी उनके सामने खड़ा हो कहने लगा—

'देखिए न! अब भी उसे गाना ही सूझता है!'

उनकी ओर से कोई उत्तर न मिलने पर वह आगे बढ़ता चला गया। इस बार सुनाई पड़ा—

'सकल रागिणी बुझि बाजाबे
आमार प्राणे...'

आगे के शब्द अस्पष्ट। फिर व्याकुलता भरे प्राण की आवाज़—

'मिलने बाजिबे बाँशी......'

गान वहीं एक-ब-एक रुक गया। फिर वही निस्तब्धता! रविशंकर

को प्रतीत हुआ उनका ही निःश्वास बंद करने के लिए किसी के हाथ उनके गले पर आ पड़े हैं। उन्हें अपनी आँखों के सामने मूर्च्छित होने के मुहूर्त्त जैसा अंधकार दिखाई देने लगा। उस अंधकार को चीरकर देख पाने की शक्ति उनमें नहीं रह गई थी।

जेल की कोठरी से बाहर निकाले जाने पर हवा उन्हें काटती सी मालूम पड़ी। धूप वे बर्दाश्त न कर सके। ऊपर मेघ का कहीं पता नहीं। जिन आदमियों पर उनकी दृष्टि पड़ी वे सबके सब बेहद कुत्सित और भद्दे दिखाई दिए। मुँह फेरकर वे अपनी कोठरी में वापस चले गए।

तीसरे पहर, एक संतरी ने जिसका पहरा सबेरे टिकटी के पास था, आकर उनसे कहा—

'एक झटके ने ही उसकी आवाज़ बंद कर दी। जीभ बाहर निकल आई और ख़ून से……'

जेलर को उधर ही आता देखकर वह चुप हो गया। रविशंकर के लटके हुए मस्तक के लिए आश्रय नहीं था। उन्होंने उसे कंबल पर गिर जाने दिया। उनको स्वयं याद नहीं कि कितनी देर तक वे उसी भाँति नत मस्तक हो पत्थर की मूर्त्ति जैसे बैठे रहे। तब भी सुनाई दे रहा था उन्हें—वही गीत!

उसी दिन से उसका वह स्वर उनकी स्मृति में बार बार लुकाचोरी का खेल खेला करता है।

काल कोठरी

चारों ओर घना अंधकार—एक काले दरवाज़े पर टँगी लालटेन की टिमटिमाती रोशनी—अस्थिर—झिलमिलाती हुई !

वे बड़ी बड़ी करुणा भरी आँखें, कोमल पत्ते से काँपते होठ, बिखरे बाल—जो कमर तक पहुँचकर अंधकार में विलीन हो जाते हैं ! वह अपूर्व सुन्दरी है ! एक बार दृष्टि पड़ने पर कभी भुलाई नहीं जा सकती।

'तू यहाँ ?' स्वप्न में ही वे उससे पूछना चाहते हैं। दोनों के मुँह खुल नहीं रहे हैं।

एक लड़का उसके आँचल में अपना मुँह छिपा लेने की चेष्टा कर रहा है। लड़के की आकृति उस रमणी के अनुरूप ही है। वह, मुँह ऊपर उठाकर बहुत भयभीत सा कह रहा है—'माँ...माँ...?

उस स्त्री के शरीर का रंग उसकी रेशमी साड़ी के रंग से मिलता-जुलता है। स्निग्ध चेहरे में अद्भुत चमक है पर गाल के बीचो-बीच एक छाया पड़ रही है—नंगी तलवार की ! उस पर ही अभी उसकी दृष्टि अटक गई है।

'इसे मेरे हवाले कर !' अंधकार की दिशा से कर्कश स्वर में किसी ने कहा। साथ ही, उसके हाथ की तलवार भी उठी !

'नहीं—' स्त्री ने उस बच्चे को अपने शरीर से चिपका लिया।

'इसके लिए प्राणदण्ड है, जानती नहीं?'

'परवाह नहीं!'

'तब ले...!'

तलवार का आघात हुआ। ठीक उसके चेहरे पर—वहीं, जहाँ अभी छाया थी—रक्त की धारा बह निकली! फिर दूसरा आघात उसके शरीर पर! तीसरा आघात...! वह बिना 'आह' किये ज़मीन पर लोट गई।

उसके बाहुपाश से उन्होंने लड़के को निकाला। उसकी जीभ बाहर निकल आई है। ख़ून से सारा चेहरा सन गया है।

स्त्री की बड़ी-बड़ी काली आँखें अपने लड़के के चेहरे पर ही लगी हैं! वे धीमी पड़ीं! फिर धीरे-धीरे बन्द हो गईं!

अब वह उनकी पहचान में आ गई—वे उसकी ओर बढ़ना चाहते हैं—पाँव उठ नहीं रहे हैं—चिल्लाना चाहते हैं पर आवाज़ नहीं निकल रही है। घिग्घी बँध गई है! मुँह से अस्पष्ट स्वर में निकला—'दी...ई...!'

'ठक्! ठक्! ठक्!' संतरी आ पहुँचा। उसने उन्हें जगा दिया।

कालकोठरी में बन्द कर दिए जाने पर रविशंकर इन दिनों प्रायः ऐसे ही स्वप्न देखा करते हैं। निताई की माँ को उन्होंने कभी देखा नहीं, पर वही अथवा उनके ही रूप में दीपा बार-बार उनसे पूछने आती है—'वह कहाँ है?'

कोई उत्तर न मिलने पर वे आकृतियाँ आकाश की ओर देखती हुई विलीन हो जाती हैं!

निताई को अपने घर में आश्रय देने के अपराध में उन्हें दो साल की सख़्त क़ैद और एक हज़ार रुपया जुरमाने की सज़ा हुई है किन्तु

अपनी सज़ा की ओर से वे अन्यमनस्क हैं। अपने चारों तरफ़ की दुनिया में अब उन्हें जो कुछ दिखाई देता है, उसकी भयानकता ही उन्हें क्रमशः स्वयं के प्रति अन्यमनस्क बनाती जा रही है।

उन्होंने दुख देखा था, दरिद्रता भी देखी थी। हज़ारों आदमियों को उन्होंने रोग, बीमारी, बाढ़ और दुर्भिक्ष से मरते देखा था। उससे वे दुखी भी हुए थे, पर जेल में आने के पहले का वह दुख दूसरे प्रकार का था। अब उन सबकी ओर देखनेवाली उनकी आँखें ही बदल गई हैं। अब भी निरपराधों की मौत उन्हें भयानक दीखती है पर साथ ही साथ, उन्हें उसके पीछे छिपी, चरम सीमा पर पहुँची हुई निष्ठुरता भी दिखाई दे जाती है। वैसी निष्ठुरता का जहाँ नग्न नृत्य चला करता है, वहीं, जिन अनुभूतियों की प्रतिक्रिया का भ्रम 'सुख' समझा जाता है, उसके पीछे पड़ा रहना, उन्हें भयानक अपराध और पाप प्रतीत होने लगा है।

वैसी निष्ठुरता सम्भव बनानेवालों पर उन्हें रोष भी आता है। उन्हें आश्चर्य होता है कि जहाँ ऐसी अमानुषिक हत्याएँ आए दिन हुआ करती हैं, उसी बलिभूमि पर वे इतने दिनों तक न जाने क्यों हँसते और अपने सुख का ख़याल करते चले आए हैं! सौंदर्य का उपभोग करने और सुखी होने के पहले, अब उन्हें निर्दयता के प्रभुत्व से अपना गला छुड़ाना आवश्यक दीखता है।

उनके लिए, अपनी आँखों के सामने की वास्तविकता भुला देना सम्भव नहीं है। यह वास्तविकता है भी अद्भुत! आए दिन ही, दाल में खटाई की तरह डाले गए, पूरे के पूरे, चूहे छछूँदर या छिपकलियाँ निकला करती हैं। क़ैदी जब उसकी शिकायत जेल-अधिकारियों से करता है तो उसकी इस धृष्टता के लिए उसे हथकड़ी-बेड़ी पहना दी जाती है अथवा, जेल की भाषा में अच्छी तरह "धुनाई" कर दी जाती है। इस ज़ुल्म की कहीं भी फ़रियाद नहीं।

उन्हें अपने चारों तरफ़ की दुनियाँ ही अभागों की दुनियाँ दिखाई देती है। निकट ही, उन्हें बच्चे दिखाई देते हैं, जिनकी कोई भी परवाह करनेवाला नहीं है। पिता-माता के लिए वे भारस्वरूप थे; उन्हें बचपन में ही रोटी के लिए संघर्ष करते और भाग्य के भरोसे भटकने के लिए बाध्य होना पड़ा। उस जटिल जीवन-संघर्ष में उनकी ज़िन्दगी भार बनने लगी। अपने को जीवित रखने की चेष्टा में उन्होंने बड़ों के हक़ की रोटी के लिए प्रतिद्वंद्विता की। उसी दिन से वे ख़तरनाक घोषित कर दिए गए। अपने ख़तरनाक कार्यों के कारण ही वे आए जेल में! अभी उसी दिन, जिन लड़कों के जत्थों की जेल में आमद हुई है, उन सबके चेहरों की रेखाओं में रविशंकर ने स्पष्टतया अंकित देखा है—'हमें कोई भी प्यार नहीं करता! दुनियाँ दुष्टों की ही है!'

जेल के वातावरण का एकमात्र कार्य होता है उन बच्चों का जीवन नष्ट कर देना। उनके हृदय में मनुष्यता की भावनाओं के जो अंकुर अवशेष रह जाते हैं, उनको यहाँ ज़बर्दस्ती नष्ट करके उन्हें पशुओं की श्रेणी में ढकेल दिया जाता है। वे बच्चे व्यभिचार, डकैती, ख़ून आदि के अपराधों में आजन्म क़ैद की सज़ा पाए हुए पुराने ख़ूँख़ार क़ैदियों की मर्ज़ी पर ही जेल में छोड़ दिए जाते हैं। वे उनका चाहे जिस तरह से उपयोग करें। अस्वाभाविक परिस्थितियों में रहने और अस्वाभाविक जीवन बिताने के लिये बाध्य किये जाने का सारा क्रोध वे पुराने क़ैदी, उन बच्चों, पर ही उतारते हैं। जेल से निकलते-निकलते उन अभागों की प्रकृति भी सब तरह के दुर्गुणों का समर्थन करने और उसके प्रसार के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा पानेवाली बन जाती है। शायद ही ऐसा कोई रोग हो जिसके वे जेल में रहते-रहते शिकार नहीं बन जाते। बाहर आने पर जेल की व्यावहारिक तालीम और 'इल्म' ही उनके पेशे बन जाते हैं। बाहर की दुनियाँ में भी वे अपने ही जैसे अभागों के सम्पर्क में आकर दूषित और ख़ौफ़नाक लोगों की संख्या तेज़ी से बढ़ाने लग जाते

हैं। जेल में जब कभी वैसे बच्चे रविशंकर को दिखाई दे जाते हैं तो वे कहते हैं—'बिचारे अभागो! तुम्हारा जीवन नष्ट करने के अपराधी वही हैं जो तुम्हें यहाँ ढकेलते और यहाँ की 'तालीम' हासिल करने को बाध्य करते हैं।'

उन्हें जेल के ज़नाने क़िले में बन्द रखी जानेवाली अभागी औरतें भी कभी-कभी दिखाई दे जाती हैं। वे अपने-पराए, समाज-संसार और संस्कार सबके द्वारा ठगी गई होती हैं। थोड़े दिनों जेल भुगत लेने के बाद उन औरतों की दृष्टि में यह संसार सिर्फ़ वैसे ही आदमियों की आवास-भूमि प्रतीत होने लगती है जिनका एकमात्र उद्देश्य रहता है, ठगी, चालबाज़ी, पैसे से या ज़बर्दस्ती, जिस तरह भी हो अबलाओं के शरीर पर आधिपत्य जमाना।

यहाँ रविशंकर के चारो ओर ऐसे युवकों की कमी नहीं जो उमंग, आशा और जीवन के आनन्द से अपरिचित रहे हों। पनपने और विकास की शक्ति रखनेवाले जितने भी चेहरों पर उनकी दृष्टि जाती है, सब उन्हें सूखते ही दिखाई देते हैं।

अपने चारो ओर, यह अन्याय और दुख का व्यापक साम्राज्य उन्हें उदास बना देता है और तब उन्हें कालकोठरी का अंधकार और भी घना दीखने लगता है।

कालकोठरी में जितना समय बीतता है उनके हृदय में छिड़ा हुआ संग्राम भी उतना ही जटिल होता जाता है। उनकी प्रकृति के लिए यह स्वाभाविक भी है। शिक्षित वर्ग के निरपराध व्यक्तियों के मन के बारीक पुर्ज़े जेल के कठोर अनुभवों द्वारा झकझोरे जाने पर स्वभावतः आवश्यकता से अधिक हरकत करने लग जाते हैं।

चहारदीवारी के भीतर, शारीरिक कष्ट उनके लिए विशेष महत्व नहीं रखते। बड़े से बड़े कष्टों को भी वे आसानी से बर्दाश्त कर लेते

हैं। उनके जैसे शिक्षित व्यक्ति के लिए सबसे बड़ी आघात पहुँचानेवाली बात यह हुई है कि जेल के बड़े फाटक के भीतर घुसते ही उन्हें आदमी के बदले और कुछ समझा जाने लगा है। रोशनी और प्राकृतिक सौंदर्य का उपयोग करना वे आदमी होने के नाते, अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते रहे हैं, पर जेल में घुसते ही उन्हें उस अधिकार से ज़बर्दस्ती वंचित कर दिया गया है। हिंस्र पशु की भाँति उनको पिंजड़े में बन्द करके रखा जाता है। आदमी होने के नाते वे जिसे अपना हक़ मानते हैं, उससे उन्हें अधिकाधिक वंचित करते रहना, जेल के साधारण संतरी से लेकर सुपरिंटेंडेंट तक, अपना कर्तव्य मानते हैं। उन्हें अपने चारो तरफ़ अन्याय, ज़बर्दस्ती और अंधेर का प्रभुत्व दिखाई देता है। सौंदर्य और कोमल मानवी भावनाओं को वे इतने दिनों तक प्रतिष्ठा देते आए हैं किन्तु उन्हें ही यहाँ पर वे बेइज़्ज़त होता और कुरूप बनता देखते हैं।

जेल के ये दृश्य उन्हें जब अवसादग्रस्त बनाने लगते हैं तब वे अपने को जीवित और दृढ़ बनाए रखने के लिए कल्पना की शरण लेते हैं। अतीत में देखे सौन्दर्य और उपभोग किए सुख को फिर से वे सामने लाकर देखना चाहते हैं परन्तु वह स्मृति वर्त्तमान परिस्थिति के अनुकूल नहीं उतरती। बिपरीत परिस्थिति भी उस सुन्दर स्मृति पर छींटें डालने से बाज़ नहीं आती। फिर उस स्मृति का ही सौंदर्य बनाए रखने के लिए वे उसे मन से हटाकर हृदय के एक कोने में ज़बर्दस्ती समेटकर छिपा लेते हैं।

जेल-अधिकारियों द्वारा पग-पग पर अपमानित होने पर उनके स्मृति-पट के चित्र भी विकृत होने लगते हैं। वही उनकी घबराहट का सबसे बड़ा कारण बन जाता है। तब वे जान बूझकर सब कुछ भूल जाने की चेष्टा करते हैं।

परन्तु उस कालकोठरी का अंधकार उन्हें कुछ भी भूलने नहीं

देता। जेल आने के पहले उन्होंने जितने भी दुखी-दरिद्र चेहरे देखे थे वे सब एक-एक कर उस कोठरी में रोज़ रात को सोते समय उन्हें याद आने लगते हैं।

कई साल पहले, उन्होंने एक विधवा और उसके पुत्र को देखा था। अनवरत अनाहार के कारण विधवा का शरीर दुर्बल पड़ गया था। वह अपने लड़के के कंधे का सहारा लेकर गंगा स्नान करने जाती थी। अच्छे घर की होने के कारण किसी के सामने हाथ पसारना उसके लिए असंभव था परन्तु लड़के का स्वभाव लड़कों जैसा ही था। मिठाई के लोभ में एक दिन उसने एक हलवाई के खोंचे से चोरी की। उसी समय वह पकड़ गया। हलवाई ने उसे बेतरह पीटा। लड़के के बचाने की चेष्टा में उसकी माँ की भी हलवाई ने फ़जीहत की। हाँ, दया करके उसने उन्हें पुलिस के हवाले नहीं किया। बेटे का मुँह धोने के लिये माँ उसे गंगा किनारे ले गई। ख़ून बन्द नहीं होता था, उसके मुँह से बराबर बह रहा था।

अगले दिन रविशंकर ने उन दोनों के एक रास्ते के किनारे देखा। ख़ून की उलटी करके लड़का शांत हो चुका था। माँ एकटक उसकी ओर देख रही थी। कई घण्टे बाद, डोम उस शव को उठाने आए। माँ ने उसे बलात् पकड़ रखा था।

'अपराध मेरा है—' वह पगली की भाँति कहती—'उसे क्यों घसीटते हो?'

डोमों ने उसका ख़याल नहीं किया। वे लड़के का शव घसीटकर ले चले। कई आदमी वह 'तमाशा' देखने के लिए खड़े हो गए। पर तुरन्त ही अपना रास्ता लेते-लेते उन्होंने कहा—

'भिखारिन है!'

'वह भिखारिन क्यों है? किसने उसे भिखारिन बनाया?'—ये प्रश्न उनमें से किसी के भी मन में नहीं उठे। वैसी दुर्घटनाएँ उन

सबके लिए, कीट-पतिंगों की मृत्यु से अधिक महत्व नहीं रखती थीं। लोगों का स्वभाव वैसा ही बन गया था। सिर्फ रविशंकर के मन में बार-बार प्रश्न उठता रहा—'यह हत्या है। पर किसने की? किसलिये?'

अब उस विधवा का चेहरा याद आने पर वह मानों उनसे वही प्रश्न पूछती दिखाई देती है। निताई की माँ भी जब दीपा के रूप में आती है तो उनसे वही प्रश्न करती है!

वे उन प्रश्नों का उत्तर नहीं दे पाते। उन्हें स्वयं अब संसार से एक ऐसी वस्तु लुप्त हो गई अवश्य दीखती है जिसका वहाँ अधिकता से मिलना सम्भव नहीं है। अब किसी सुन्दर चेहरे का विचार-मात्र ही उन्हें कँपा देता है। उन्हें विश्वास होने लगा है कि जिस राक्षसी वायु-मंडल में वे रहते हैं, वहाँ, उस सौंदर्य का बच पाना सम्भव ही नहीं है। पूर्ण विकास पाने के पहले ही उस सौंदर्य्य का गला घोट दिया जाना अनिवार्य है। उस पर दृष्टि पड़ते ही हत्यारे उसकी हत्या करेंगे और डोम उसे घसीटकर ले जाएँगे!

राग-विराग

'छूटते ही, तुम्हारे यहाँ आऊँगा !' उन्होंने वादा किया था।

'अच्छा ! उसी दिन की प्रतीक्षा में रहूँगी !' सरल विश्वास से उसने सिर हिलाकर सूचित किया था ! वह दरवाज़े की ओट में खड़ी थी, होंठ फड़क रहे थे, आँचल से सुखाते रहने पर भी आँखें बार-बार भर आती थीं। जाते-जाते और एक बार, पीछे फिर कर, उन्होंने देखा था—वह खिड़की से झाँक रही थी।

उस चेहरे को मन से भुलाने की उन्होंने बड़ी चेष्टा की। वह उन्हें अब अपना कर्त्तव्य पूरा करने में बाधक दीखती है। उन्होंने प्रतिज्ञा कर ली है कि जिस बर्बर सत्ता के शिकार निताई की तरह के निरपराध आदमी बनते हैं, जब तक उसका ख़ात्मा नहीं कर दिया जाता, वे अपने को तुच्छ पारिवारिक सुख से वंचित ही रखेंगे। अपने चारों ओर उस प्रकार के अत्याचार का साम्राज्य रहते वे अपने व्यक्तिगत सुख की चिन्ता को बहुत बड़े पापों में गिनते हैं।

स्त्री-मात्र को ही वे अपने नव-निर्धारित कर्त्तव्य-पथ में बाधक मानते हैं। औरतें उनके लिए अब भी सबसे अधिक रहस्यमयी हैं, उनके सौन्दर्य में उन्हें प्रकृति की अद्भुत, सूक्ष्म कारीगरी दीखती है,

उनकी कमनीयता उन्हें अपनी ओर बड़े प्रबल रूप से आकर्षित भी करती है—परंतु स्त्रियों के ये सारे गुण उन्हें पुरुषों को अकर्मण्य बनाकर रखनेवाले जँचने लगे हैं। नारी के आकर्षण में उन्हें अपनी आज़ादी नष्ट होने के सिवा कर्त्तव्य-च्युत होने की सम्भावना अधिक दीखती है, इसीलिए उन्होंने स्त्रियों से यथासंभव दूर रहने का ही निश्चय किया है। अपने उसी निश्चय पर दृढ़ रहने के लिए वे दीपा के रूप की स्मृति भी जाग्रत नहीं करना चाहते।

फिर भी, घने से घने अंधकार में, विदाई के समय का उसका वह चेहरा उन्हे घेरे रहता है।

पुनः प्रकाश में आ जाने पर उनकी आँखें चकाचौंध होने लगीं। 'अंधकार' में रहते-रहते अपनी जिन भावनाओं के आक्रमण को वे प्रत्युक्तियों द्वारा क्षीण करने के बजाए तीव्र घृणा और उपेक्षा प्रदर्शित कर बलात् कुचल डालते थे, उसे ही इस समय अपने पर प्रबलता से विजय पाते देख रहे हैं। उसकी अवहेला करने में वे अपने को असमर्थ पाते हैं। उनके हृदय में अनवरत चेष्टा से दबाया हुआ संघर्ष, विस्फोट का रूप धारण कर बाहर निकलने लगा है। देखते-देखते वह आँधी की तरह फैल जाता है। उसके आवेग में उनकी विचारधारा छिन्न-भिन्न हो जाती है। उनकी हालत अजीब-सी होने लगती है।

वही चेहरा और अपना वही वादा उन्हें याद आ रहा है। वह उन्हें अपनी ओर बुला रही है। अपने मन को भरोसा देने के लिए वे कहते हैं—'इसमें हुआ ही क्या ? दुनियाँ तो इसे उचित ही कहती है। कोई भी तो इसे पाप नहीं गिनता !'

उनके पाँव स्वतः ही अनायास उसी के घर की दिशा में बढ़ने लगे हैं।

वह पगडंडी की सर्पाकार आकृति—जिसके आस-पास धू-धू करते बालू पर की हरियाली—रास्ता चलनेवालों की जलती आँखों पर वही मानो पानी छिड़का करती है। दुपहरिया के तपते तलवों के लिए वह मख़मली गद्दा बन जाती है। थकावट से चूर सूखता हृदय वहाँ पहुँचकर फिर से लहलहाने लगता है।

कछार में चलने पर ज्यों-ज्यों आदमी आगे बढ़ता है, हवा सिक्त और ज़मीन तर मिलती है। पके फूट और ख़रबूज़ों की मिट्टी के साथ मिली सुगंध बड़ी मीठी है। बीच-बीच में रखवाली के लिए बँधे मचान मिलते हैं। उन पर पुतलों की तरह दीखनेवाले छोटे बच्चे बिठा दिए गए हैं। नीचे ज़मीन पर बैठी उनकी बहनें 'गाना-गोटी' खेल रही हैं। सयाने लड़के थोड़ी दूर पर मैदान में 'कबड्डी' खेल रहे हैं।

जाते-जाते रविशंकर एक पके ख़रबूज़े के पास खड़े हो गए। उस ख़रबूज़े का रंग गहरा लाल हो चला है। उस पर पड़े बालू के कण ललाट-कुंकुम जैसे चमक रहे हैं। सहसा, उस दिन दरवाज़े की ओट से झाँकनेवाले किसी मुखड़े की याद उन्हें हो आती है।

उन्हें उस ओर निहारता देखकर मचान के नीचे से गोटी खेलना छोड़कर एक छोटी लड़की उनके पास आई। उनसे बिना कुछ पूछे ही उसने ख़रबूज़ा उठाकर उनके हाथ में रख दिया। वे अवाक् हो उसकी ओर देखते रहे।

'ले जा, राही!' कहकर वह जाने लगी। उसके भोलेपन पर वे चकित हुए।

'बड़े मीठे हैं!' कहकर वह हँसने लगी। फिर अपनी सहेलियों की ओर जाते-जाते उसने कहा—'मैं न दूँगी तो तू खाएगा कहाँ से?'

वे लज्जित-से हुए। उनका ही मन उन्हें समझाने लगा—'इन

सब सुन्दर चेहरों को अपने मन में कुत्सित बनाकर देखने का हमें अधिकार नहीं है।'

वह चेहरा पहले की अपेक्षा अधिक गंभीर बन गया है। उस पर की कई रेखाएँ अब कातरता के साथ-साथ भीतर ही भीतर चलनेवाला संघर्ष भी व्यक्त करने लगी हैं। होंठ बंद रखने पर भी चेहरे की आभा ही व्यक्त किए दे रही है—'मैं दया और करुणा की पात्री हूँ!'

वह उनके सामने खड़ी है। चुपचाप, शान्त—जैसी है, वैसी ही! अपने स्वाभाविक वेष में। उसके चेहरे पर उसके आन्तरिक भाव आइने जैसे स्पष्ट झलक जाते हैं। उसके चरित्र की दो विशेषताएँ—सचाई और पवित्रता, बाहर छलकी पड़ती हैं। अपने हृदय की भावनायें छिपाना उसके लिए असंभव है।

रविशंकर उसकी तुलना अपनी कल्पना के एक अन्य चित्र से करते हैं। उसे जैसा उनकी दृष्टि में रहना चाहिए उसके विपरीत है। उसका वास्तविक चित्र और ही तरह का है। दोनों ठीक-ठीक मिल नहीं रहे हैं।

'वह बदल गई है---' वे निश्चय कर लेते हैं। यह परिवर्त्तन उन्हें अच्छा नहीं लगता। इसे वे धोखा समझते हैं। उस पर उन्हें ग़ुस्सा आता है। मन-ही-मन वे उससे प्रतिशोध लेने की ठान लेते हैं।

फिर भी, वह अपनी ओर उन्हें खींचती है। उसकी करुणा भरी आँखों में अद्भुत आकर्षण है। रविशंकर उससे बचना चाहते हैं। उस आकर्षण के ही कारण वे उसे अपराधिनी गिनते हैं। प्रतिशोध लेने का भाव उन्हें चंचल बना देता है।

वह दया और करुणा की भिखारिणी है। रविशंकर किसी प्रकार की भी दया या करुणा दिखाने के लिये तैयार नहीं। वे उसके आकर्षण से बचने की जितनी चेष्टा करते हैं, उतने ही 'क्रूर' बनते जा रहे हैं।

जिस क्रूरता के ख़िलाफ़ वे सर्वत्र संग्राम करते चलते हैं उसी को उन्होंने पराश्रय दिया है। दीपा के प्रति वही क्रूरता निर्लज्ज भाव से प्रदर्शित करने में उन्हें कोई हिचक नहीं हो रही है।

दीपा भी उनका वह विचित्र मानसिक संघर्ष देख रही है। वे उसे दूर भागते से दीखते हैं। उसके चेहरे पर आतंक की रेखाएँ घिर आने का यही कारण है जो उसका रोम-रोम कँपा देने के लिए काफ़ी है।

उस रात को, उनके मन का संघर्ष क्रमशः विषम बनता गया। साथ ही, उनके हृदय में 'मानवी' और 'दानवी' दोनों प्रवृत्तियों की भीषण कशम-कश भी शुरू हुई। एक का संबंध आदर्श-रक्षा और दूसरे का शारीरिक सुख से होता है। 'मानवी' प्रवृत्ति सार्वजनिक सुख के लिए उनको अपनी सारी शक्ति केन्द्रीभूत किए रहने को उकसाती है। वह उन्हें जेल में किए निश्चय की याद दिलाती है। जिसे वे 'दानवी' प्रवृत्ति क़रार दिया करते हैं वह उन्हें स्वार्थ और सुख की ओर खींच ले जाना चाहती है। वह उन्हें जेल की प्रतिज्ञावाले आदर्श को तिलांजलि दे देने के लिए कह रही है।

धीरे-धीरे वे थकते जाते हैं। उन्हें कालकोठरी का अंधकार याद आ जाता है। साथ ही, अपना वह भयानक, सूना और शुष्क जीवन! वे सिहर उठते हैं। तब वे निश्चय करते हैं—'जीवित रहने के लिए थोड़ा सुख भी आवश्यक है। मेरे लिए यह क्षम्य ही नहीं बल्कि ज़रूरी है। संभव है, भविष्य में मुझे सदा के लिए उसका त्याग कर देना पड़े इसलिए उसका एक और अनुभव!......पर मैं उसमें भूला नहीं रहूँगा।'

जिससे वे इन दिनों अधिक भय खाते हैं उसी 'दानवी' प्रवृत्ति ने इस समय उन पर पूरा अधिकार जमा लिया है। उनके सबसे

प्रिय और आराध्य विचार भी उससे दब गए हैं। उनका जिसने स्थान लिया, वह है—वासना!

'हा-हा-हा-हा' किसी की हँसी सुनाई पड़ी। इसी आवाज़ से उनकी नींद खुली। उन्होंने सिर ऊपर उठाया। पौ फट रही है। शुक्र-तारा विलीन हो रहा है। उसी के नीचे कोई अकेला पक्षी हिमालय की दिशा में उड़ता जा रहा है। वे भी गंगा की ओर बढ़े।

'हा-हा-हा-हा' गंगा हँस रही है। रविशंकर समझते हैं, वे उन्हें देखकर ही हँस रही हैं। ऊँचे किनारे से जल में देखने पर उन्हें अपना प्रतिबिंब झिलमिल करता दिखाई देता है। गंगा मानो उसे रगड़ रगड़ कर धो रही हैं, पर उसकी कालिमा फीकी पड़ने के लक्षण नहीं दिखाई देते। उस प्रतिबिंब से ही रविशंकर पूछते हैं—

'तुम सुखी हो?'

'नहीं!' प्रतिबिंब ने सिर हिलाकर उत्तर दिया।

'फिर नीचे ही क्यों गिरे?'

'तुमने ही तो गिराया?'

'सुख के लोभ में ही ऐसा हुआ?' तुरंत ही वे चौंक पड़ते हैं। अपने हृदय की आवाज़ गंगा के टेढ़े मेढ़े स्वर में उन्हें सुनाई पड़ती है—'इतने अत्याचारों और दुखों के बीच रहकर अपने को आदमी गिनने-वाला स्वयं सुखी होने की बात क्योंकर सोच सकता है? सुख तो सिर्फ़ अत्याचारों के ख़िलाफ़ लड़ते जाने और दूसरों का दुख कम करने की चेष्टा में ही अनुभव किया जा सकता है।'

उसी दिन गंगा की मिट्टी में उन्होंने अपने कपड़े रँग लिए।

आँधी में

सावन की रात्रि । काले मेघों की चादर में सब तारे छिप गए हैं। गंगा ने भी बादलों का ही रंग धारण किया है। वे लबालब भर आई हैं।

हवा तेज़ चल रही है। दीपक बुझते जाते हैं। लोग अपने अपने घरों के दरवाज़े बंद करने लगे हैं। जो घर अभी थोड़ी देर पहले प्रकाश में जगमग करते थे वे अब अंधकार में ध्यानमग्न से दीखते हैं।

रविशंकर अभी किनारे पर ही खड़े हैं। उनके सामने दो रास्ते हैं। एक घर का और दूसरा पार उतरने के घाट का। किधर जाएँ, निश्चय करना अब भी उनके लिए कठिन हो रहा है। घने अंधकार और आनेवाली बौछार का ख़याल कर वे घर लौटना चाहते हैं, पर पाँव बढ़ाते ही रुक जाते हैं—'नहीं, मैं उसी में भूला नहीं रह सकता।'

घाट का रास्ता थोड़ी दूर तक ही दिखाई देता है। वह तलवार की तरह लप लप कर रहा है। उस ओर देखकर वे मन में कहते हैं—'अत्याचारों के विरुद्ध लड़ना ही मेरा कर्त्तव्य है। उसी लड़ाई में सफलता पाने पर हमें पीड़ित चेहरे न दिखाई देंगे। तभी वास्तव में मैं भी सुखी हो सकूँगा।'

वे उसी रास्ते पर आगे बढ़ना चाहते हैं पर उन्हें सुनाई दे जाती है

घर के रास्ते पर से आने वाली किसी के पैरों के कड़ों की ध्वनि। इस ध्वनि से वे परिचित हैं। हज़ार रोकने की चेष्टा करने पर भी वह उनके हृदय में प्रतिध्वनित हो ही जाती है। उस स्वर के आगे, हृदय में संघर्ष करते हुए अन्य समस्त स्वर दब जाते हैं। इसी ध्वनि ने जेल में निश्चित की हुई उनकी धारणाओं को अनायास ही विकृत कर दिया था। परन्तु इस समय उन्होंने अपने हृदय को दृढ़तम बना रखा है।

कछार के जिस ठिकाने वे जाया करते हैं, उसे मालूम है। वह उसी ओर जा रही है। उसका आँचल उड़ना चाहता है। उसने घूँघट का एक सिरा दाँतों से कसकर दबा रखा है। इसलिये, जब आकाश में बिजली चमकती है, तब उसके मुँह का केवल थोड़ा सा अंश ही दिखाई देता है अभिसार करने निकली हुई किसी युवती के चित्र जैसा!

'घर चलो!' पास आने पर उसने कहा।

रविशंकर को मालूम पड़ा मानो उन्हें वह स्वप्न में ही दिखाई दे रही है। वे अपनी जगह पर मौन खड़े रहे।

'आते क्यों नहीं?'

'अभी समय नहीं हुआ।'

'चलो, चलो!' उसने उनका हाथ पकड़ा। उस स्पर्श में ही, उन्हें जान पड़ा, उसने अपना शरीर, मन, जीवन, यौवन और रूप सब कुछ उन्हें अर्पण कर दिया है।

वह उन्हें अपने साथ खींच ले चली। तब उन्हें चेतना हुई। उसके हाथ उन्हें अंगारे-से जलते प्रतीत हुए। उन्होंने उसे झटक दिया। वे घाट के रास्ते पर बढ़ने लगे।

'उधर कहाँ?'

'तू अपने रास्ते जा, मैं अपने!' उन्होंने गंगा के उस पार संकेत करते हुए कहा—

'मुझे उधर जाना है।'

उसी ओर बिजली बारबार बादलों का कलेजा चीर रही थी! इस बार अपनी पैनी, लपलपाती धार से उसने बादलों के कई टुकड़े कर दिए। ज़ोरों का कड़ाका हुआ। मालूम पड़ा जैसे वज्रपात का भीषण अट्टहास हो।

डर से उसके प्राण तक काँप उठे!

झम झमा झम्..झम झमा झम्..बड़ी देर से वर्षा हो रही है। बौछार के गंगा से टकराने पर सवाल-जवाब की गत सुनाई देती है। बौछार की ललकार का गंगा अत्यंत सरल, गंभीर और स्वाभाविक स्वरों में उत्तर देती है।

रात्रि ने कालिका का रूप धारण किया है। आकाश में रह रह कर 'प्रलयशंख' बज उठता है। हवा के झकोरे बड़े बड़े वृक्षों तक को झकझोर रहे हैं। बीच बीच में प्रकृति भी 'हा व्...हा व्...' करती हुई मुँह बाए मानो पृथ्वी की सारी सृष्टि का ग्रास करने के लिए आगे बढ़ती दिखाई देती है।

उसका प्रचंड रूप देखकर उन दोनों ने किनारे पर बँधी फूस की छतवाली एक डोंगी में आश्रय लिया है। रविशंकर संघर्ष करते करते थक कर सो गए हैं। नाव के कम्पन के साथ साथ वे भी हिलते-डुलते हैं। सपने में भी वे नाव पर ही बैठे हैं। बीच बीच में अपने माझियों से कहते हैं—'खेते चलो, आख़िरी ज़ोर! हैं यों।'

उनके पाँव की ओर आतंक, भय और सर्दी से सिमटी हुई वह बैठी है। बौछार से बचने के लिए वह बंद खिड़की की ओर खिसक आई है। शीत में कँपकँपी अधिक बढ़ जाने पर वह नाव की दीवाल से जितना चिपट सकती थी, चिपट गई है।

हवा के झोंके घंटों से नाव की खिड़की पर आघात कर रहे हैं। उसके तख्ते खट-खट शब्द कर रहे हैं। हवा के झकोरे खिड़की को

कँपा देते हैं, हिलाते हैं, दहला देते हैं, फिर भी उस पर सीधा आक्रमण न करके उसके पार्श्व से ही निकल जाते हैं।

स्वप्न में भी वह रविशंकर को उनकी नाव पर बैठी दीखती है। वहाँ, उससे उन्हें घृणा नहीं! वह उनकी नाव की माँगी पर बैठी हुई नीचे गंगा की ओर झाँक रही है। उसकी ओर देखकर वे उससे कहते हैं—'इधर आ! मैं तेरा हाथ पकड़ रखूँगा, फिर तुझे कोई भय नहीं!' वह उनके निकट आने लगती है। आलिंगन के लिए उन दोनों के हाथ आगे बढ़ते हैं!

सबेरा होते-होते हवा का रुख़ पलट गया है। इस बार उसके एक झोंके ने खिड़की पर सामने से आक्रमण किया। शायद, गंगा की लहरें भी उसी प्रतीक्षा में थीं। उन्होंने भी उस झोंके के साथ ही आघात किया।

'फटाक्'—खिड़की खुल गई। लहरों ने बहुत सा पानी डोंगी में उछाल दिया। रविशंकर उसी में छप्-छप् करते जाग पड़े।

उनके सामने, सचमुच ही वह डोंगी की माँगी पर बैठी है। पर उसकी आकृति में स्वप्न का झिलमिलापन नहीं रह गया है। अब वह बड़ी स्पष्ट दिखाई देती है। स्वप्न में आगे बढ़ाए हुए अपने हाथ समेटने की चेष्टा करते हुए उन्होंने कहा—'तू यहाँ क्यों आई?'

उनकी आवाज़ में रूखापन था। नौका में पानी उछाल देने का अपराध भी वे उसी पर मँढ़ने लगे। फिर, उसकी ओर बिना देखे ही वे किनारे पर जा उतरे।

वे घाट की ओर बढ़े। उनके पीछे-पीछे वह भी चल पड़ी। बड़ी मुश्किल से उन्होंने उससे पीछा छुड़ाया।

उनका उससे अलग होने का यही दिन है।

अब प्रकृति ने पुनः अपना स्वाभाविक, शांत रूप धारण किया है। जिन वृक्षों को उसने रात भर झकझोरा था, इस समय उनके ही अंग

पर वह दुलार से हाथ फेरने लगी है। मानो, उन्हें मना रही हो !

परंतु मानव-हृदय की थाह किसने पाई है ? प्रकृति जब शांत और नीरव रहती है उस समय भी मानव अपने हृदय में उठनेवाले तूफ़ानों, आँधी-पानी तथा भावों के झकोरों में लक्ष्य-रूप कितने ही हृदयों को लताओं की तरह कँपाया करते हैं।

वह पिछली रात की अपेक्षा अधिक काँपने लगी है। अब उसे नाव की खिड़की के तख्तों का भी सहारा नहीं है। आश्रय का स्थान कहीं भी नहीं रहा। बीच तूफ़ान में ही वह आ खड़ी हुई है। झकोरे पर झकोरे ! वे उसे झकझोरते हैं। चारों तरफ़ से बौछार ! वे उस पर आघात पर आघात करते हैं। वह सहती जाती है—सब अत्याचार नतमस्तक होकर, मौन होकर !

अकेली।

प्रेरणा

'तुम्हारी ऐसी दुर्दशा किसने की ?' दरिद्रता और रोग से आक्रान्त व्यक्तियों से रविशंकर पूछते हैं। आजकल अधिकतर ऐसे ही लोग उनकी दृष्टि में आते रहते हैं।

दशाश्वमेध के रास्ते पर प्रायः दुखी कातर चेहरों की भीड़ लगी रहती है। गंगातट की सैर और नौका-विहार के लिए जानेवालों का यही रास्ता है। इसी रास्ते के किनारे कितने ही दीन भिखारी पड़े रहते हैं। कितने वहीं जन्म लेते हैं, वहीं बैठे बैठे जीवन भर हाथ पसार भीख माँगा करते हैं, और फिर अपनी जीवन-यात्रा समाप्त कर वहीं धूल में मिल जाते हैं। वहीं, एक कोने में बैठा सूरदास आने जाने वालों को बार बार मृत्यु की याद दिलाया करता है—

"जा दिन मन पंछी उड़ि जैहैं,
ता दिन तेरे तन-तरुवर के, सबै पात झरि जैहैं।
या देही को गर्व न करिए, स्यार, काग, गिध खैहैं॥"

रोग, दुख और मृत्यु का वहाँ सर्वत्र निवास दिखाई देता है। रविशंकर मन ही मन निश्चय करते हैं—"क्या इनसे कहीं मुक्ति नहीं ?"

इधर कई दिनों से जब भी वे उस रास्ते से निकलते हैं तो एक भिखारिणी उनका ध्यान विशेषतया अपनी ओर खींचती है। वह नागरिकों के पाँवों तले लोटती रहती है। पहले भूख से अब रोग से। उसके सारे बदन में फफोले निकल आए हैं काले रंग के! शरीर विषाक्त हो जाने के कारण नागरिकों की कौन कहे, भिखारियों तक ने उसको अपनी मंडली से बहिष्कृत कर दिया है। अब सिर्फ़ गिद्धों की जमात उसे घेरकर बैठने लगी है।

एक दिन उसके पास पहुँचने पर रविशंकर ने उसे पहचान लिया उसकी आँखों से! उसके पुत्र को घसीट ले जाने के लिए आनेवाले डोमों को उन्हीं आँखों ने कोसा था। आज उनमें किसी को भी कोसने की शक्ति न थी। फिर भी थीं वे ही आँखें!

'तेरी यह दुर्दशा?' उनके मुँह से निकल पड़ा—'इतनी यातना पाकर भी तू जीवित है? और जीना चाहती है? किसलिए? इसमें कौन सा सुख है?'

उसने कोई उत्तर नहीं दिया। उसकी आँखें शून्य जैसी ताकती रहीं।

'आप जानते नहीं?' उनके पीछे से किसी ने कहा—'लेकिन ज़रा ठहरिए!'

एक संन्यासी आगे बढ़े। उन्होंने अपने कमंडल से भिखारिणी के मुँह में गंगाजल डाला। उसकी व्यग्रता कुछ दूर हुई। चेतना वापस आने लगी।

'बचाई जा सकती है—' यह निश्चय करके संन्यासी ने चारों तरफ़ दृष्टि दौड़ाई। एक ठेलेवाले को उन्होंने बुलाया। उससे भिखारिणी को ले चलने के लिए कहा।

'कहाँ बाबा?' ठेलेवाले ने पूछा।

'रामकृष्ण सेवाश्रम लेते आना।'

वे आगे बढ़े। रविशंकर को भी उन्होंने अपने साथ आने का संकेत किया। थोड़ी दूर आगे बढ़ने पर वे कहने लगे—'उसे यों ही मरने तो नहीं दिया जा सकता? हमारी इसी काशी नगरी में मानवता के महान् पुजारी हुए हैं। जो दीपक वे जला गए हैं उसमें तेल बत्ती डालते जाना और कुछ नहीं तो, इस तीर्थस्थान में रहने के ही कारण हमारा कर्त्तव्य हो जाता है।'

'पर वह जीना ही किसलिए चाहती है?'

'नए जीवन के लिए!'

रविशंकर एक बार सिहर उठे। संन्यासी कहते गए—'मृत्यु और पुनर्जन्म के चक्र से ही तो हमारा जीवन बना है। उसी पुनर्जीवन की आशा में ही वह इतना सब झेलती है। उसकी वह आशा पूर्ण करने में, जहाँ तक हो सके, सहायता करना हमारा कर्त्तव्य है। उसकी आशा सफल होगी। वह फिर से नया जीवन पाएगी।'

उस दिन शाम को रविशंकर काँपते हुए अपनी कुटिया में लौटे।

अगले दिन से ही वे सेवाश्रम के औषधालय में काम भी करने लगे।

उनके जेल जाने से पहले और बाद के जीवन तथा विचारों में बहुत बड़े परिवर्त्तन आने लगे हैं। अब उनका अपने पुराने साथियों के विचारों से गहरा संघर्ष चलता है। जितनी बातें अब उन्हें अपनी समझ में उचित और अच्छी जँचती हैं, जिन कामों को वे अपना कर्त्तव्य मानते हैं, वे सब उन साथियों की दृष्टि में निरर्थक होने के साथ साथ नाजायज़ और ख़तरनाक हैं। यह विभेद दृष्टिकोण का है और इसीलिए इसका संघर्ष-क्षेत्र भी बहुत विस्तृत बन गया है।

विद्यालय के अधिकारियों ने उनकी योग्यता का ख़याल करके उनके सामने यह प्रस्ताव रखा कि वे यदि अपने कार्यों पर खेद प्रकट करें तो

अध्यापक का पद उन्हें फिर से दिया जा सकता है। पर, जेल जाने से पहले जो मनोवृत्ति थी उससे, अब वे स्वयं अपरिचित बन गए हैं। वे, इन दिनों, उस प्रस्ताव से दूसरा बड़ा अपमान और कुछ नहीं मान सकते थे। वे अध्यापन-कार्य से अलग हो गए।

उन्होंने अब एक और ही व्रत लिया है। उनका नया व्रत अत्याचार और अन्याय के ख़िलाफ़ लड़ते जाना है। इस व्रत की पूर्त्ति के लिए सिर्फ़ सेवाश्रम में दरिद्रनारायण की सेवा करने से उन्हें संतोष नहीं होता। उसी में उन्हें अपनी शक्ति तथा समय का पूरा-पूरा सदुपयोग होता नहीं दिखाई देता। वे जानते हैं कि सेवा के वे कार्य पत्तों के सींचने-जैसे हैं। समाज के जो घाव ऊपर दीखते हैं, उनसे पीड़ित कुछ आदमियों की वेदना दूर करने की वह एक बहुत मामूली चेष्टा मात्र है। अपने व्रत की रक्षा के लिए उन्हें उस पीड़ा की मूल में पहुँचना ही वास्तविक कार्य दिखाई देता है।

उनके विचारों को इन दिनों जिससे प्रेरणा मिला करती है, वह, असल में इस युग का वातावरण है। इन दिनों अत्याचार और अन्याय की आवाज़ चारो तरफ़ से आ रही है। बहुत से सुधारक संघ, और राजनैतिक दल स्थापित हो गए हैं। उपन्यास-नाटकों में भी उसकी ही चर्चा रहती है।

अन्याय और अत्याचारों के समर्थक सिवा ऐसे इने-गिने लोगों के, जिनकी आजीविका, किसी न किसी रूप में, उसी पर निर्भर रहती है और दूसरे नहीं हैं। ज़्यादा संख्या अत्याचारों से कुचले जानेवालों की ही है, इसलिए उनका ख़ात्मा चाहनेवालों की ही आवाज़ चारो ओर सुनाई पड़ती है।

इस ख़ात्मे की युक्तियों के बारे में, मोटे तौर पर, दो तरह के विचार रखनेवाले लोग हैं। एक वे, जिनके ख़याल से कि सब तरह के अन्याय

और अत्याचारों की जड़ में अपने देशवासियों का अज्ञान और उनकी अशिक्षा है। पहले हमें उन्हें ही दूर करना चाहिए। उनके दूर हो जाने पर सामाजिक जीवन का रूप ही इस तरह पलट जायगा कि वहाँ पर किसी प्रकार के अन्याय और अत्याचार की गुंजायश नहीं रह जाएगी। दूसरे प्रकार के विचार रखनेवाले लोगों का कहना है कि जब तक राजनैतिक अधिकार अपने हाथ में नहीं आ जाता, न तो किसी तरह की सामाजिक कुरीति ही दूर की जा सकती है और न अत्याचार, अन्याय ही दूर होंगे। जब बहस संघर्ष के तरीक़ों के बारे में चलती है तो पहला दल शांति और अहिंसा का और दूसरा सशस्त्र क्रान्ति का पक्ष लेता है।

पर रविशंकर जैसे लोग इन सब मामलों की कोरी बहस में न पड़कर काम करते जाने में ही विश्वास रखते हैं। उनकी इस धारणा के कई विशेष कारण हैं। उनके लिए अन्याय और अत्याचार, कल्पना-जगत की अथवा कहीं दूर की सुनी बातें नहीं हैं। देश के किसी कोने में बाढ़ आई है, हज़ारों आदमी बरबाद हो गए हैं, सरकार उनकी कोई परवा नहीं करती, उसके द्वारा नियुक्त इंजीनियर और अफ़सर सिर्फ़ अपनी तनख्वाह और सरकारी ख़जाने का ख़याल रखते हैं—आदि बातें देखने के लिए उन्हें बहुत दूर जाने की या किताबों के पन्ने उलटने की ज़रूरत नहीं पड़ती। वह सब वे अपनी आँखों देखते और उनके कारण स्वयं भुगतते रहे हैं।

जब वे उस तबाही, निर्दयता और क्रूरता के कारणों का ख़याल करते हैं तब उन्हें सब जगह एक ही कारण भिन्न-भिन्न रूपों में काम करता दिखाई देता है। सामाजिक, आर्थिक या राजनैतिक, सभी तरह के अंधेर, उन्हें विशृंखलित, विभिन्न कारणों से नहीं बल्कि जिस एक ही केन्द्रीय यंत्र से संचालित होते दिखाई देते हैं, वह है उनकी दृष्टि में 'ग़ुलामी'।

इस ग़ुलामी के ख़िलाफ़ आवाज़ उठानेवालों को उन्होंने सब तरह

के अपमान और मुसीबतें झेलने के साथ साथ क्रूर और अमानुषिक दण्ड भुगतते अपनी आँखों देखा है। नवयुवक यदि शराब के अभ्यस्त बनते या अन्य कारणों से भ्रष्ट होकर अपनी जीवन-शक्ति नष्ट करने लगते हैं, तब भी कोई उनकी परवा नहीं करता। पर, ज्यों ही वे सब प्रकार के अन्याय, अत्याचार की जड़—ग़ुलामी के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाते हुए अपनी जीवन-शक्ति बढ़ाने की चेष्टा में लगते हैं त्योंही उन्हें ख़तरनाक घोषित कर दिया जाता है, उन्हें जेलों में बंद रखा जाता है, द्वीपान्तर की सज़ा दी जाती है और उनके विकाश का रास्ता चारों तरफ़ से रोककर उन्हें नष्ट कर दिया जाता है।

इतना सब देखते और सहते रहने के बाद भी चुप बैठे रहना, उन्हें अपनी आदमीयत की शान के ख़िलाफ़ दीखता है। एक व्रत ले लेने के पश्चात् उस पर, उसी लगन से कार्य करने में लग जाने की उनकी आदत है। इसीलिए अत्याचार और अन्याय के ख़िलाफ़ लड़ने का व्रत ले लेने पर वे चुप न बैठ सके। अब, दुखी, दरिद्री चेहरों के सामने पड़ने पर उनकी दुर्दशा का कारण पूछने के बजाय, वे कहते हैं—'हम तुम्हारी ऐसी दुर्दशा न होने देंगे।'

वे अब पूरी तरह से अपने युग की क्रान्तिकारी हवा के साथ बहने लगे हैं। इस संग्राम के ही कारण वे पुलिस की निगाहों में भी चढ़ने लगे हैं। परंतु दैनिक जीवन के तुच्छ स्वार्थों से ऊपर उठने की अपनी प्रवृत्ति से उन्हें संतोष है। वे यह अनुभव करते हैं कि उनके कार्य, केवल अपने देश के ही नहीं वरन् मानव समाज के उत्थान से गहरा संबंध रखते हैं, वे संसार के एक नए युग के आविर्भाव में हिस्सा ले रहे हैं, जिसके स्थापित हो जाने पर आदमी आज की अपेक्षा कहीं अधिक सुखी रह सकेगा।

किन्तु शायद उन्हें पता नहीं है कि जिस अन्याय और अत्याचार के ख़िलाफ़ वे प्राणों की बाज़ी लगाकर लड़ने के लिए तैयार रहते हैं,

उसे ही, एक उदाहरण में, उन्होंने स्वयं भी पराश्रय दे रखा है। उनके आघात से पीड़ित वह उन्हें दिखाई नहीं देती, पर रहती उनके आसपास में ही है। संभव है इसी कारण अपने अज्ञात मन में वे कभी-कभी एक विशेष प्रकार की व्यग्रता अनुभव करते हैं।

किसी की दीन, दुखी, कातर आँखें उन्हें अब भी, अनवरत, अपनी ही ओर ताकती दिखाई देती हैं।

नारी

चारों तरफ़ सन्नाटा ! जीवन का कहीं भी चिह्न नहीं । केवल रविशंकर के अन्तःकरण के 'दैत्य' जगे हैं । वे एक एक कर अखाड़े में उतरते हैं । रविशंकर के विचारों के साथ उनका मल्लयुद्ध चलता है ।

सेवाश्रम के हाते के ही भीतर किन्तु उससे अलग, छोटी दीवारों से घिरा हुआ अद्वैताश्रम है । सेवाश्रम चलानेवाले संन्यासी यहीं रहते हैं । उसी के एक किनारे की छोटी कुटिया में इन दिनों रविशंकर रहते हैं । उनकी इस कुटिया और जेल की उस कालकोठरी में, जिसमें वे रह चुके थे, कोई विशेष समानता नहीं है, फिर भी अपने और अपने विचारों को वे जेल की ही तरह जकड़ा हुआ पाते हैं ।

यहाँ के जीवन का भी उन पर असर पड़ा है । जैसी उनकी भीतरी प्रकृति है, बाहर से देखने पर उसके विपरीत, वे कड़े मिज़ाज के दीखते हैं । उसके अन्तःकरण में परिवार, समाज तथा सब तरह के आदमियों के बीच में हिलमिलकर रहने की जितनी तीव्र इच्छा है, उनका बाहरी जीवन उतना ही एकान्त बन चुका है । असल में, उनकी प्रकृति बहुत मिलनसार है पर वे हमेशा ही गंभीर बने रहते हैं ।

अपनी कुटिया में, ज़मीन पर बिछी चटाई पर वे अभी अभी लेटे

हैं। आँखें बंद करते ही आज उन्हें बहुत सी बातें याद आने लगी हैं। किसी की सदा पीछा करती रहनेवाली आँखों से वे इस समय अपनी नज़र नहीं बचा सकते। वे उन्हें उलाहना देती हैं—'तुमने ही तो... ।'

जाग्रत अवस्था में वे उसे 'दुर्बलता' कहकर टाल देते हैं। यह है भी एक ख़ास तरह की दुर्बलता—बुद्धिजीवियों के सर्वथा उपयुक्त! उनके सामने यदि निर्णय कराने के लिए कोई यह मामला ले आता कि एक स्त्री अपने स्वामी के किसी सत्कार्य में कभी भी बाधक नहीं होती, वह सिर्फ़ यही चाहती है, कि समाज की उँगलियों से उसे बचाए रखने के लिए, पति कम से कम, प्रत्यक्षतया उसका परित्याग न करे; फिर भी पति उसे 'कलंकिनी' कहकर दूर भागता चलता है, जिसके कारण उस स्त्री का जीवन असह्य हो जाता है, तो रविशंकर का फ़ैसला अवश्य ही उस पति के विपक्ष में और स्त्री के पक्ष में होता। वे उस पति को अन्यायी क़रार देकर उसके लिए दंड की व्यवस्था भी सोचने लग जाते। परंतु अपने निजी मामले में वे अपने को अन्यायी स्वीकार करने के लिए हरगिज़ तैयार नहीं। जहाँ तक सिद्धांत का प्रश्न है, जिन अन्यायों के ख़िलाफ़ वे लड़ते हैं, उनका वे किसी भी रूप में समर्थन करने के लिए तैयार नहीं हैं, पर उनके दैनिक जीवन के किसी कार्य द्वारा वैसे अन्याय संभव अवश्य होते हैं और किसी न किसी रूप में वे स्वयं ही उन अन्यायों के कारण बनते हैं, ऐसी दशा में वे उन अन्यायों को अस्वीकार करते रहने की ही चेष्टा करते हैं। उस अन्याय को दूर करने के बजाय वे उसका समर्थन करते हैं। यदि उनका अपना अंतःकरण ही उनका ध्यान उस ओर ले जाता है तो वे अपनी दुर्बलताओं के समर्थन में ही दलीलें देकर अपने हृदय की आवाज़ को ज़बर्दस्ती बंद कर दिया करते हैं।

इस समय, थोड़ी देर के लिए उन दलीलों का ज़ोर कम हो गया है। अपनी आँखों के सामने की भाव-मूर्ति को वे सहिष्णुता की प्रति-

मूर्त्ति मान रहे हैं। उसकी लांछना, भर्त्सना, उसके दुख आदि का कारण बहुत अंश में उन्हें उसके प्रति अपना बर्त्ताव ही दिखाई देता है। अब कोरी सहानुभूति दिखाकर ही नहीं, बल्कि काफ़ी दूर तक स्वयं कष्ट उठाकर, वे उसे सुखी देखना चाहते हैं।

परंतु सुख का विचार मात्र ही उनके सामने का दृश्य पलट देता है। उनकी अपनी ही दशा अजीब-सी हो जाती है। वे अपने को लाचारी की हालत में पड़े हुए पक्षी-जैसा देखते हैं। हवा बंद हो गई है। पंख फड़फड़ाना व्यर्थ है। तीव्र गति से वे नीचे की ओर गिरते आ रहे हैं। नीचे पत्थर हैं। वे उनसे टकराना ही चाहते हैं।

इसी समय, उनकी आँखें खुल जाती हैं। बाहर सड़क पर कुछ आहट सुनाई देती है। वे कान लगाकर सुनते हैं। फिर, पता नहीं अपने आपसे, या स्वप्न की उस मूर्त्ति से कहते हैं—

'प्रतीक्षा, अनुकूल वायु की प्रतीक्षा करनी ही पड़ेगी।'

'तुमने ही तो...' वह वास्तव में यही कहती है। अत्यधिक मानसिक संघर्ष का प्रतिकूल प्रभाव उसके स्वास्थ्य पर पड़ा है। अब वह बहुत दुर्बल हो गई है।

हठात्, मौसम पलट जाने के कारण उसे बुख़ार चढ़ आया है। सुजान पंडित अगली फ़सल के लिए खेतों की व्यवस्था करने घर चले गए हैं। उसकी देखभाल करने के लिए कई दिन से योगिनी माँ ही आ जाती हैं परंतु सेवा का भार संन्यासिनी पर छोड़ना उचित न समझकर सचिता भी पिछले कई दिनों से काम पर नहीं जा सका है।

बुख़ार के साथ साथ दीपा की मानसिक दुर्बलता भी बढ़ गई है। पुराने से लेकर नए तक, उसे जितने भी आघात लगे हैं, उनमें से किसी एक की भी स्मृति होने पर उसे मालूम पड़ता है मानो उसी घड़ी फिर से, उस पर उन सब आघातों की एक साथ ही पुनरावृत्ति होने लगी

है। अपने मन की समस्त वेदना प्रकट किए बिना भी वह नहीं रह सकती। बहुत से मामलों में झूठ ही अपने को ही अपराधिनी मानती है और उस अपराध के दंड की कल्पना करके व्यग्र होने लगती है। योगिनी माँ उसे बार बार विश्वास दिलाती हैं—'तूने कुछ नहीं किया! तुझे कुछ भी भुगतना नहीं पड़ेगा।'

तब, दीपा छोटे बच्चों की तरह उनकी बातों पर विश्वास करके शांत हो जाती है।

योगिनी माँ को उसका यह कष्ट अनुचित दीखता है। उनका ख़याल है कि दीपा के मन के सारे विशृंखल यंत्र, उसके सारे रोग, रविशंकर की थोड़ी-सी सहानुभूति पा जाने से दूर हो सकते हैं। इसीलिए जब एक दिन, दीपा बार बार अपना सिर दीवार से टकरा रही थी और उसको सम्हालना मुश्किल हो रहा था, उन्होंने सचिता से रवि-शंकर को बुलाने के लिए कहा।

उसकी चर्चा छिड़ते ही रविशंकर का चेहरा सहसा गंभीर बन गया। उस पर थोड़ी वितृष्णा के भी भाव आकर जमने लगे। टालने के ख़याल से उन्होंने कहा—'उसके लिए परेशानी उठाने का यह वक़्त नहीं। तुम देखते नहीं, देशव्यापी तूफ़ान आ रहा है। अपनी सारी शक्ति हमें उसी की तैयारी में लगानी चाहिए।'

'लेकिन उसे यों ही रास्ते की भिखारिणी तो नहीं बनने दिया जा सकता?'

'अजी, जैसी हालत अपने देश की करोड़ों बहनों, माताओं की है वैसी ही, उसकी भी होगी।'

'यदि आसानी से, उनमें से एक के भी जीवन का कष्ट, यदि कम किया जा सकता है तो उसे क्यों न कम कर दिया जाय?'

'यही तुम्हारी ग़लती है—' इन दिनों रविशंकर जिस नतीजे पर

पहुँचे थे, उन्होंने जो सिद्धान्त बना लिए थे उनकी व्याख्या करते हुए वे कहने लगे—'जब तक सारे देश और समाज से अन्याय, अत्याचारों का ख़ात्मा नहीं कर दिया जाता तब तक अकेले किसी एक व्यक्ति विशेष का दुख हम दूर नहीं कर सकते। बल्कि, औरतों के मामले में जहाँ तक संभव हो, हमेशा सचेत रहना चाहिए। नारी बड़ी अजीब जाति की होती है। वह कभी भी यह सहन नहीं कर सकती कि हम उसे छोड़कर किसी और को प्यार करें। उसमें ईर्षा इस सीमा तक रहती है कि वह हमारा इस मातृ-भूमि को प्यार करना भी सहन नहीं कर सकती।

वह इसे भी अपनी प्रतिद्वंद्विनी के रूप में देखने लगती है, और इसीलिए वह हमें स्वदेश प्रेम से वंचित रखने की कोशिश करती है।

'लेकिन इस मामले में सारा अपराध क्या औरतों का ही है ?'

'वे ही तो हमें अपनी ओर इस सीमा तक खींचे रहती हैं कि हमारे द्वारा कोई कार्य संभव ही नहीं हो पाता। विशेषतया किसी ग़ुलाम देश के लिए तो केवल स्त्रियों की ही चिन्ता में पड़े रहना महान् पाप है। तुम कल्पना भी नहीं कर सकते, केवल उनके ही कारण जीवन का बोझ कितना भारी हो जाता है। आदमी की सारी शक्ति उसी बोझ के उठाने में नष्ट होने लगती है। कोई बिरला ही ऐसा निकलता है जिसमें उस बोझ उठाने के अतिरिक्त और भी कामों के लिए शक्ति बच रहती है।

'पर उस दुर्बलता के अपराधी क्या स्वयं वे पुरुष नहीं हैं ?'

'सब सुधारवादी ऐसा ही सोचते हैं—' झुँझलाकर रविशंकर ने कहा—'पुरुषों की दुर्बलता का औरतें हमेशा ही अनुचित लाभ उठाती हैं।'

वे किसी भी दशा में अपना अपराध स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हुए। दीपा के कष्टों की सारी ज़िम्मेदारी वे उसी पर मढ़कर उस प्रश्न को टालने की कोशिश करते रहे परंतु सचिता भी आसानी से

परास्त होनेवाला न था। उसने ज़ोर देकर कहा कि दीपा के प्रति उनके और लापरवाही दिखाने से संभव है, वह स्वयं ही अपनी जान की ग्राहक बन जाए। इसी सिलसिले में सचिता ने, अज्ञान की अवस्था में उसके दीवार से सिर टकरा लेने का ज़िक्र किया। सचिता की इन सब दलीलों की हँसी उड़ाते हुए रविशंकर ने कहा—

'तुम्हारी यह उक्ति मैं बिलकुल ही समझ नहीं सका। चाहे कितना भी कष्ट हो आदमी आत्महत्या के लिए क्योंकर तैयार हो सकता है, यह मैं अपनी कल्पना में भी अनुभव नहीं कर सकता। कष्ट, दुख, संघर्ष— ये सब चीज़ें तो हमारे यहाँ की स्त्रियों के रक्त में ही प्रवेश कर गई हैं, उनके जीवन का एक अंग बन गई हैं, वे उसे छोड़कर कैसे जी सकती हैं?'

इन युक्तियों के अतिरिक्त भी दीपा की ख़बर सुनकर रविशंकर कुछ चिंतित हो जाने से अपने को न रोक पाए। वे उसकी प्रकृति से परिचित हैं। अभी हाल में ही बहुत कुछ उसकी ही जैसी परिस्थिति में एक स्त्री के स्वयं अपने शरीर में आग लगा लेने का उदाहरण उनके सामने है। उनके ही सेवाश्रम में वह स्त्री-चिकित्सा के लिए लाई गई थी। चिकित्सा करनेवाले संन्यासी उसे बचाना चाहते थे पर जलने की उस वेदना के होते हुए भी यह स्त्री बिल्कुल शांत रहकर यही कहती रही—'यह सब मैंने जानबूझ कर किया है। मुझे बचाने की चेष्टा आप न करें।'

उस दृश्य की याद आने पर बार बार रविशंकर यही निश्चय करते हैं—'औरतों के लिए सब कुछ संभव है। उनकी प्रकृति ही अद्भुत है। उनसे—दीपा से भी सतर्क रहना ज़रूरी है।' किन्तु पुनः सामने आ जाता है उनका सिद्धांत!

'उसे बचाना ज़रूरी है।' सचिता ज़िद बाँधे ही रहा।

'उसे बचाने के पहले तुम स्वयं अपने को क्यों नहीं बचाते? उसके

बचाने की वही सबसे सुन्दर दवा होगी।' रविशंकर अपने सिद्धांत पर अटल रहे।

'अपने को ?'

'हाँ, अपने को!' उन्होंने ज़ोर देते हुए कहा—'अपने को सब तरह के आकर्षण से भावी संग्राम के लिए बचा रखो। यह समय क्या औरतों की चिन्ता करने का है ? देखते नहीं, कैसा देशव्यापी तूफ़ान मँडराता आ रहा है ?'

बाहर निकलने पर उन्होंने देखा, वास्तव में ही तूफ़ान आने के सब लक्षण इकट्ठे होने लगे हैं।

हत्यारा

दशाश्वमेध के चौराहे पर गोली चल गई है। ठीक उसी जगह जहाँ सिपाही, सवारी गाड़ियों का यातायात नियंत्रित किया करता है—वहीं पर। वक्त भी शाम का है। इसी समय वहाँ सबसे अधिक भीड़ भी लगी रहती है।

'पकड़ो! पकड़ो!' की आवाज़ बुलंद होती जा रही है। धमाका वास्तव में ही सुनाई पड़ा है परंतु किसने किस पर आक्रमण किया, यह पता लगाना कठिन है। हर आदमी अपने सामने के अपरिचित को ही हत्यारा मान बैठा है, पर किसी का अंग स्पर्श करने की किसी की हिम्मत नहीं।

'बम-पार्टी का आदमी था!' एक तरफ़ से आवाज़ आई। ख़ुफ़िया-विभाग के कई आदमी सादी पोशाक में वहाँ पहले से ही खड़े हैं। वे आपस में अपरिचितों-जैसी बातें कर रहे हैं—

'हमला तो ख़ुफ़िया अफ़सर पर ही हुआ है।'

'पर वे बाल बाल बच गए।'

'निशाना चूक गया। नहीं तो.........'

तुरंत ही पुलिस की लारी वहाँ आ धमकी। एक इंस्पेक्टर मामले

की जाँच करने लगा। उन्हें बीच चौराहे पर ही एक रिवालवर पड़ा मिला। उसी जगह जहाँ सिपाही खड़ा रहता है।

भीड़ अब भी काफ़ी है, पर रिवालवर फेंकनेवाले का पता नहीं लग रहा है। तब ताँगों के अड्डे के पास बैठनेवाला, घसियारा पकड़ा गया। दारोग़ा ने उसे कस के दो तमाचे लगाए। घसियारे ने रिवालवर चलानेवाले को पहचानना स्वीकार कर लिया। सिपाहियों ने चौराहा घेर लिया। गली से भी कई आदमी पकड़कर लाए गए। घसियारे के सामने जिसे भी खड़ा किया जाता है, पहचानने के पहले वह दारोग़ा की ओर देख लेता है तब 'हाँ' या 'ना' करता है।

बहुत-से आदमी पकड़कर कोतवाली ले जाए जा रहे हैं। पुलिस को अपना आतंक फैलाने का मौक़ा मिल गया है।

इस आतंक का भीतरी रहस्य जाननेवाले ऐसे-ऐसे गोलीकांडों से चकित नहीं होते। वे जानते हैं कि बड़े पैमाने पर आतंक का सिलसिला जारी करने के लिए स्वयं पुलिस और ख़ुफ़िया मुहकमे द्वारा ही तरह तरह के स्वाँग रचे जाते हैं। उन्हीं के द्वारा ख़ुफ़िया-विभाग बहुतेरे राजनैतिक षड्यंत्रों का भंडाभोड़ किया करता है। वे अपने बड़े अफ़सरों तथा सर्वसाधारण का ध्यान, जगह-जगह ख़ुफ़िया अफ़सरों पर होनेवाले हमलों की ओर खींचते हैं। इन हमलों से ख़ुफ़िया अफ़सरान शायद ही कभी घायल होते हैं। ध्यान से अध्ययन करनेवालों को कुछ समय के बाद उन मुखियों के अमर होने का ही संदेह होने लग जाता है। परंतु ख़ुफ़िया-विभाग उन्हीं हमलों का उपयोग अपने आतंक-प्रसार के कार्य में पूरा-पूरा करता है।

कथित 'हत्यारे' पकड़े जाते हैं। जो पकड़े जाते हैं उनसे ख़ुफ़िया-विभाग को हमेशा आतंकवादियों की वही लंबी नामावली प्राप्त हो जाती है जो पहले से उनके दफ़्तर में तैयार रखी रहती है। आतंक-वादी हत्यारे पकड़कर हवालात ले जाये जाते हैं। वहाँ उनसे निरपराध

रहने और खुली हवा उपभोग करने का टैक्स वसूल किया जाता है। दूसरे निरपराध लोगों को फँसाने और उनके ख़िलाफ़ बयान देने के लिए उन्हीं कथित हत्यारों को वाध्य किया जाता है। उनका अपना 'क़सूर' स्वीकार कराने के लिए उन्हें तरह-तरह की शारीरिक यंत्रणाएँ दी जाती हैं। इसके लिए बिजली के तार पकड़ा दिए जाने जैसे वैज्ञानिक तरीक़ों से लेकर माघ महीने की रात में ठंढे पानी से नहलाने या बरफ़ पर बिठा दिए जाने तक के पुराने तरीक़े अपनाए जाते हैं। इन सब यंत्रणाओं का निरीक्षण करनेवाले विलायत के पासशुदा नये आए हुए अफ़सर रहते हैं। आदमी-जैसे यंत्र को किसी तुच्छातितुच्छ सामग्री में परिणत कर देने की कला में वे पूरे पारंगत होते हैं।

दशाश्वमेध के चौराहे पर का धमाका ख़ुफ़िया विभाग के दमन-चक्र चालू होने का संकेत था।

'क्या हुआ है, माँ?' धमाका सुनते ही दीपा ने योगिनी माँ से पूछा। तुरन्त ही वह भी खिड़की पर आकर बाहर झाँकने लगी।

धमाके की आवाज़ से उसका कलेजा दहलने लगा है। भीड़ के आदमियों से कम आतंक उसके चेहरे पर नहीं है। उसके पाँव थर-थर काँपने लगे हैं।

उधर से ही, अपनी ओर अपती भीड़ में उसे सच्चिता दिखाई दिया। उसके पीछे से पुलिसवालों की आवाज़ आ रही है—'पकड़ो! पकड़ो!'

'उसे नहीं! उसे नहीं!' वह चिल्लाना चाहती है। दुर्बलता के कारण उसकी आवाज तेज़ नहीं हो पाती। चौराहे पर के कोलाहल तक तो वह पहुँच ही नहीं सकती!

सच्चिता उसकी आँखों से ओझल हो गया। अब उसकी दृष्टि के सामने थे सिर्फ़ कई लाल पगड़ियोंवाले। उनके हाथों में लाठियाँ थीं। वे हाथ दीपा को ख़ून से रँगे दिखाई पड़े!

मन दुर्बल रहने के कारण ख़ून का रंग उसे बहुत गाढ़ा दिखाई दिया। सामने की सब चीज़ें काली बनती जाती हैं। इसी समय सचिता दौड़ता हाँफता दरवाज़े पर आ खड़ा हुआ। उसके दरवाज़े में धक्का देने के ढंग से ही पता लगता है कि वह बहुत घबराया हुआ है। व्यर्थ की चिंता का भार दीपा के मन पर न पड़े, इस विचार से अपने को उसने बहुत कुछ सम्हाल लिया। फिर उसे और योगिनी माँ को अपने साथ गंगा किनारे चलने के लिए कहा।

मामले की गंभीरता का आभास उन्हें भी मिल चुका है। अधिक सोच-विचार का वक़्त भी नहीं रह गया है। रास्ते की ओर के दरवाज़े पर लाठियों के ठकठकाए जाने की आवाज़ आने लगी है।

उस मकान से गंगा की ओर जानेवाली गली में पहुँचने के लिए पीछे की ओर से एक और रास्ता है। उस दरवाज़े में सिर्फ़ एक साँकल चढ़ी रहती है। उसी रास्ते वे लोग बाहर निकले। उस गली में बिरले ही कभी कोई निकलता था। वह इतनी संकीर्ण थी कि सूर्य की रोशनी वहाँ पहुँच ही नहीं पाती थी। इस समय वहाँ बिलकुल अँधेरा था।

जिस मकान में वे इतने दिनों रह चुके थे, उसकी ओर उन्होंने पुनः एक बार देखा। इस समय वह घर उन्हें अजगर की तरह मुँह खोले, फन ऊँचा किए खड़ा दिखाई दिया। अँधेरे में टटोलते वे आगे बढ़े। गली टेढ़ी-मेढ़ी जाती थी पर उसकी संकीर्णता के कारण उसमें भटकने या गिरने का डर नहीं है। इस समय वहाँ ऐसा सन्नाटा छा रहा है कि वे एक दूसरे की साँस लेने की आवाज़ भी सुन लेते हैं। कुछ दूर आगे निकल जाने पर ही उन्हें प्रकाश दिखाई दिया। पत्थर की सीढ़ियों से गंगा की लहरों के टकराने की आवाज़ सुनाई देने लगी। दीपा की दृष्टि उस पार की सफ़ेद दिखाई देनेवाली बालू तक पहुँचने लगी।

घाट पर भी सन्नाटा है। बीमारी से शरीर दुर्बल रहने के कारण दीपा ऊपर की सीढ़ी पर ही बैठ गई। एक बार चारों तरफ़ दृष्टि

दौड़ाकर सचिता ने सारी परिस्थिति उनको समझा दी। उसने पुलिस द्वारा अपने को 'हत्यारा' घोषित किए जाने की बात भी बतलाई।

योगिनी माँ ने दीपा की देखभाल का भार प्रसन्नता से अपने ऊपर लिया। उस मकान में पुनः लौटने की उनकी राय नहीं हुई। डर था कि पुलिस की जिरह और ख़ुफ़िया के पाले पड़कर दीपा यों ही पागल बन जायेगी।

इस बीच डैनों की तरह डाँड़ फटफटाती एक नाव आकर किनारे लगी। माझी परिचित था। उसने सचिता को जल्दी से सवार हो जाने का इशारा किया। सचिता ने दीपा को फिर से सावधान किया। जाते-जाते उसने उस माझी के ही द्वारा सब समाचार मँगाते रहने का वचन दिया।

'मैं हत्यारा नहीं हूँ!' उसका चेहरा अपनी सफ़ाई में कह रहा है।

'तुम वैसे ही हत्यारे हो जैसी मैं कलंकिनी हूँ!' दीपा उसे संतोष और सांत्वना देती है।

वह नाव पर सवार हुआ। डाँड़ फिर फड़कने लगे। उनके सहारे नाव बीच गंगा की ओर चली। थोड़ी देर तक वह ऊपर की सीढ़ी से दिखाई देती रही। दीपा नीचे की सीढ़ियों पर जाने के लिए उठ खड़ी हुई। योगिनी माँ थोड़ी देर उसकी ओर ध्यानपूर्वक देखती रहीं, फिर उन्होंने दीपा का हाथ पकड़ कर कहा—

'बेटी, तुम्हारे लिए इन सीढ़ियों पर आगे उतरना अच्छा नहीं!'

डाँड़ चलाने की आवाज़ धीमी पड़ गई। नाव भी रात्रि के अंधकार में विलीन हो गई।

भेंट

'और कितनी दूर है, माँ !'

दीपा बार बार योगिनी माँ से पूछती है। उनके आश्रम में ही उसकी वेदना शुरू हुई है। उस वेदना को वह अपने भीतर ही जकड़ रखने की कोशिश करती है, परंतु गाड़ी के ऊँची नीची ज़मीन पर चलने और हिलने-डुलने से वह असह्य हो ही जाती है।

'सेवाश्रम अब दूर नहीं !' योगिनी माँ उत्तर देती हैं।

उन्होंने दीपा का सिर अपनी गोद में ले लिया। गोद नरम है। सिहरकर, काँटे बने हुए दीपा के रोमों को विश्राम मिलने लगा। उसके माथे पर हाथ फेर कर उन्होंने कहा—'हम जल्दी ही वहाँ जा पहुँचेंगी, बेटी !'

पर उसे रास्ता ख़त्म होता नहीं दिखाई देता। विलम्ब सहन न कर सकने पर एक बार उसने कहा—

'अब यहीं किसी पेड़ की आड़ में मुझे उतार दो !'

'थोड़ा और सब्र करो, बेटी !' योगिनी माँ ने उसे फिर सांत्वना दी—'शिशु को जन्म देने में तुझे सिर्फ़ अपना रक्त-मांस ही नहीं देना है बल्कि अपने प्राणों की ममता की भी भेंट चढ़ा देने की ज़रूरत है।'

ज्यों त्यों करके गाड़ी सेवाश्रम पहुँची। गाड़ीवान ने दीपा को उतारकर बरामदे तक ले जाने में योगिनी माँ की मदद की। भीड़ वहाँ पहले से ही लगी है। मरीज़ कोलाहल मचा रहे हैं। हरएक अपना ही रोग सबसे अधिक दुखदाई समझ रहा है और इसीलिए चिकित्सक का भी ध्यान अपनी ही ओर सबसे पहले आकर्षित करने के लिए उतावला है। उन्हीं की जमात के पीछे, दीवार से उढककर दीपा बैठ गई। उसकी लाचारी की हालत देख करके भी दरबान ने ख़बर दी—'अनाथालय की सब जगहें भरी हैं।'

'अब इसे और कहीं ले जाया नहीं जा सकता?' योगिनी माँ ने उससे पूछा।

'यहाँ रोज़ ही, इनसे भी बदतर हालत में, कितनी ही औरतें वापस जाती हैं।' कुछ प्राप्ति की आशा न देखकर दरबान ने उपेक्षा जतलाते हुए कहा।

'अच्छा।' यहाँ की दाई तो थोड़ी देर के लिए इधर आ सकती है?'

'अगर डाक्टर बाबू का हुक्म हुआ तब!'

डाक्टर का ध्यान योगिनी माँ की ओर गया। मरीज़ों के झंझट से झँझलाए रहने के कारण उन्होंने भी पहले टालना चाहा, पर उनके काषाय वस्त्र पर दृष्टि जाते ही उनके अनुरोध की वे अवहेलना नहीं कर सके। उन्होंने दरबान से दाई बुला देने के लिए कहा।

इस बीच में बरामदे में खड़े लोगों में दीपा के विषय में टीका-टिप्पणी शुरू हो गई।

'बड़ी बेशर्म है।' एक बूढ़ी ने कहा।

'मैं उसकी जगह होती तो चुल्लू भर पानी में डूब मरती मगर यहाँ हरगिज़ न आती।' पास ही खड़ी एक स्त्री ने बूढ़ी की बातों की पुष्टि की।

'इसका स्वामी नहीं है?'

'स्वामी रहता तो भिक्षुणी के साथ यहाँ आती ?'

'कलंक से होगा, तभी तो खैराती सेवाश्रम में आई है।'

दीपा उनकी बातें सुनकर सहसा चीख़ उठी। डाक्टर का मिज़ाज पहले से ही चिड़चिड़ा हो रहा था। अपने कान में ऊँगली डाले वे बाहर आकर दीपा को डाँटने लगे—'चिल्लाती क्यों है ?' फिर योगिनी माँ की ओर देखकर कहा—'उसे चुप क्यों नहीं करातीं ?'

डाक्टर के बग़ल में ही दवा की शीशियों से घिरे रविशंकर खड़े हैं। कितने ही रोगी दवा लेने के लिए अपनी अपनी शीशी एक साथ ही उनके आगे बढ़ा रहे हैं। बाहर कोलाहल सुनकर वे भी अपने हाथ की शीशी में दवा हिलाते बाहर निकले। बरामदे में चेहरा पहचानने भर की रोशनी है। उनके हाथ की शीशी नीचे गिरकर चूर चूर हो गई।

दीपा को शारीरिक पीड़ा से भी ज़बर्दस्त, पास की औरतों के मुँह से निकली अपने संबंध की बातें लगती हैं। उनके कानों में पड़ते ही वह किसी भयानक दुःस्वप्न की भाँति छटपटाने और कराहने लगी। उसका हृदय ज़ोरों से धक् धक् करने लगा। आँखें बंद किए रहना भी उसके लिए संभव नहीं है।

इस बार आँखें खोलते ही उसकी दृष्टि रविशंकर के चेहरे पर गई। अगले क्षण ही वह मूर्च्छित हो गई।

दाई के वहाँ पहुँच जाने पर परिस्थिति सम्हल गई। वह दीपा को और कई औरतों की सहायता ले आपरेशन के कमरे में उठा ले गई। उस कमरे का दरवाज़ा भी बंद कर लिया गया।

कुछ देर बाद, जब वह कमरा खुला, तब दाई अपने हाथ में एक बच्चा लिए निकली। उसे ऊँचा उठा उसने सबको दिखाया। बच्चा 'हूँ...हूँ......' कर रहा है। शायद वह सामने खड़े लोगों की हृदयहीनता का उपहास करता हुआ कह रहा है—'तुम्हारी हज़ार क्रूरताओं के प्रतिकूल भी देखो—मैं हूँ।'

'कैसा सुन्दर है !' अभी थोड़ी देर पहले, दीपा पर कलक लगानेवाली स्त्री ने कहा—'पर कोई भी इसकी परवा करनेवाला नहीं ! हाय-हाय !'

रविशंकर ने भी उसे देखा। मन ही मन उन्होंने कहा—'और मैंने उसे यों ही रास्ते का भिखारी बना दिया !' फिर लज्जा से उन्होंने अपना सिर नीचा कर लिया।

'स्वार्थी कहीं के ! छीः !' वे बार-बार अपने को धिक्कारने लगे। उनका अपना मन भूत बनकर उन्हें खदेड़े चलता है। अपना ही चेहरा उन्हें क्रूर, खूँख़ार प्रतीत होता है। उससे वे अपना पीछा छुड़ाने की कोशिश करते हैं, पर असफल रहते हैं।

उसकी आँखें उनके भुलाए नहीं भूलतीं। वे उन्हें कोसतीं नहीं, केवल अपनी ही सफ़ाई देकर कहती हैं—'मैंने तो कुछ किया नहीं !'

रविशंकर के लिए उस दृष्टि की वह सफ़ाई ही असह्य बन रही है।

रात में, वे सो नहीं सके। बड़ी देर तक अपने सारे जीवन का सिंहावलोकन करते रहे। उस समय, उन्हें अपना आदर्श ही, धोखा देनेवाला दिखाई देता है। अपने पारिवारिक जीवन के त्याग में उन्हें अपनी ग़ैर ज़िम्मेदारी छिपी दीखती है। जिसका दायित्व उन्होंने स्वयं अपने ऊपर लिया, उसे ही उन्होंने रास्ते का भिखारी बना दिया ! जो एकमात्र उन्हीं पर अवलंबित है, उसके लिए ही उन्होंने कहीं आश्रय नहीं रहने दिया। इन सब अपराधों को अपना ही मानकर वे अपने को धिक्कारने लगे—'तुम मनुष्य नहीं, राक्षस हो ! अनायास ही तो उसे उतना कष्ट दिया ! किसलिए ? व्यर्थ का भ्रम ! उस भ्रम से ही तुमने अपना या संसार का कौन सा बड़ा उपकार किया ? कुछ भी तो नहीं !'

पारिवारिक बंधनों से अपने को मुक्त कर लेने के बाद से उस मुहूर्त्त तक उन्हें अपना कोई भी काम ऐसा नहीं दीखता जिसका वे गर्व कर

सकते हों। उन्होंने जो कुछ भी किया है वह दीपा को बिना किसी भाँति का कष्ट न दिये भी उसी हद तक किया जा सकता था। बल्कि, उस हालत में, उनकी वैसी बहुत सी शक्ति अवशेष रहती जिसे उन्होंने अपने निजी जीवन के मानसिक संघर्ष में लगा दिया है।

इस ढंग से, एक बार विचारधारा में पड़ते ही, बुद्धिजीवियों की जैसी स्वाभाविक प्रकृति हो जाती है वैसी ही रविशंकर की भी बन गई। उसी क्षण से उन्होंने अपनी कार्य-शैली ही पलट देना निश्चय किया। वे इस समय दीपा से माफ़ी माँगने के लिए भी तैयार हैं।

अपने को संतोष देने के लिए वे कहते हैं—

'अभी विशेष कुछ बिगड़ा नहीं है! बात सम्हाली जा सकती है।'

परंतु अपने काम का ढर्रा पलट लेना उनकी अपनी मर्ज़ी की बात नहीं रह गई है। गोदौलिया गोलीकांड के सिलसिले में पुलिस की नामावली में उनका भी नाम है। वह उन्हें ढूँढ़ती फिरती है। उनके सेवाश्रम में काम करने का भी पता सरकारी जासूसों को लग गया है। ख़ुफ़िया की दृष्टि में उनका संन्यासी के वस्त्र पहनना और दरिद्र-नारायण की सेवा का व्रत ले लेना और भी संदेह का कारण बन गया है। उनकी जिस पर निगाह रहती है उस 'असामी' को वे भठियारख़ाने में बैठा देखना ख़ुशी ख़ुशी बर्दाश्त कर लेते हैं, पर उनके देवमंदिर जाने का रास्ता वे हमेशा रोककर खड़े हो जाते हैं। कारण यह रहता है कि सच्चाई और ईमानदारी का रास्ता लेनेवालों से अपने साथ किसी न किसी मौक़े पर संघर्ष ठन जाना, यह मुहकमा अनिवार्य समझता है।

एक दिन अपनी कुटिया से निकलते ही रविशंकर ने सेवाश्रम के सदर दरवाज़े पर वर्दी तथा सादी पोशाक में कई पुलिस-कर्मचारियों को

खड़ा देखा। पिछले दिनों से धर-पकड़ की जैसी धूम शुरू हो गई है उसे देखकर उन्हें विश्वास हो गया कि वे अवश्य उन्हें ही गिरफ़्तार करने आए हैं। एकाएक जेल का सारा दृश्य उनकी आँखों के सामने नाच गया। उन्होंने निश्चय किया—

'वे मुझे पिंजड़े में बंद कर पंगु और निकम्मा बना देना चाहते हैं। मैं इसे हरगिज़ बर्दाश्त नहीं कर सकता।'

पिछले कई दिनों से उनका मानसिक संघर्ष भी अब एक और ही रूप लेने लगा है—'उसे जितना कष्ट दिया है उसका प्रतिकार भी तो मुझे करना है! उसके लिए वास्तविक प्रायश्चित्त!'

सदर दरवाज़े की ओर के रास्ते पर बूट जूतों के मचमच करने की आवाज़ तेज़ होती जाती है। वे लोग रविशंकर की कुटिया की ही ओर बढ़ते आ रहे हैं। रविशंकर की निगाह चिकित्सालय के हाते में प्रवेश करनेवाले दरवाज़े की ओर गई। उसके दोनों पट खुले हैं। वह दरवाज़ा इस समय तक पुलिस की निगाहों की ओट में है। स्वाभाविक ढंग से क़दम बढ़ाते हुए रविशंकर उसी दरवाज़े की ओर बढ़े। चिकित्सालय के हाते में प्रवेश करके उन्होंने वह दरवाज़ा बंद कर दिया।

थोड़ी देर बाद एक और रास्ते से वे बाहर सड़क पर आ निकले। वहाँ गंगास्नान के लिए जानेवालों का ताँता लगा है। रविशंकर भी उनके ही साथ हो लिए।

संतान

नीचे से अनवरत गंगा का कलकल शब्द सुनाई देता है। सबेरे सूर्य निकलते ही उसी द्वार से प्रकाश आने लगता है। दीपा का सारा घर आलोकित हो जाता है।

सबेरे की धूप अब भी अच्छी लगती है। इस समय दीपा, बच्चे को दरवाज़े के पास धूप में लिटा देती है। बच्चा अपने आप मगन हो खेलता रहता है। वह ऊपर की ओर, पता नहीं क्या क्या, देखता है और हाथ-पाँव ज़ोरों से उछालने लगता है। उसी प्रयत्न में वह उलट भी जाता है। फिर वह सीधे होने के लिए भरपूर परिश्रम करता है।

माँ, पास में ही बैठी, उसकी ओर देखती और पता नहीं कितनी बातें, सोचती रहती है। अपनी काफ़ी शक्ति लगा चुकने पर भी जब बच्चा अपने आप सीधा नहीं हो पाता तो 'ऊँ...ऊँ...' करने लगता है। माँ, बच्चे की ओर देखकर मुसकराती है। पता नहीं कितनी बार योगिनी माँ ने उसे समझाया है—'अत्यधिक यत्न से रखने पर बच्चे ख़राब हो जाते हैं।' फिर भी वे बातें दीपा की समझ में नहीं आतीं। बच्चा जब कभी रोता है, माँ उसे उठाकर अपनी गोद में चिपका लेती है। बच्चा थोड़ी देर 'चब्-चब्' करता है और तब पेट भर जाने पर ख़र्राटे

लेने लगता है। इसी भाँति उलटा पड़ जाने पर जब बच्चा 'ऊँ...ऊँ...' करता है तो माँ उसे एक हलकी थपकी लगाकर फिर से सीधा लिटा देती है।

सच्चिता उन्हें रोज़ इसी समय उस पार से देखने आता है। अब उसे दीपा का चेहरा बदला हुआ दीखता है। उस चेहरे में, पहले वह जहाँ विषाद छिपा देखता था, अब वहीं उसे असीम आनंद दिखाई देता है। ऐसा परिवर्त्तन, यदि उसने अपनी आँखों न देखकर किसी पुस्तक में पढ़ा होता तो उस पर कभी भी उसे विश्वास न होता।

उसका ध्यान योगिनी माँ पर जाता है। इन दिनों, वास्तविक माँ से भी अधिक मातृत्व का भाव उनके ही चेहरे पर प्रस्फुटित होता उसने देखा है। उनका आनंद स्वप्न के आनंद-जैसा मधुर है। बच्चा, जब उनकी गोद में नहीं होता और ज़मीन पर पड़ा हुआ हाथ-पाँव उछालता रहता है, उस समय उसके हिलने के साथ ही साथ योगिनी माँ के हाथ पाँव उसे खिलाते रहने के लिये आप से आप हिलने लगते हैं। शायद, उस समय उनका निःश्वास भी उस बच्चे के ही निःश्वास के साथ चढ़ता-उतरता है।

सच्चिता की नाव जब बीच गंगा में पहुँचती है, उसी समय वह दीपा की पहचान में आ जाती है। सच्चिता अकेले ही नाव खेकर लाता और ले जाता है। उसी समय दीपा नीचे जाकर घाट की ओर का दरवाज़ा खोल आती है।

पर आज दीपा को उस नाव पर एक और आदमी दिखाई पड़ा। नाव के थोड़ा घूमने पर उसका चेहरा भी दिखाई दिया। दीपा पहचान गई। आज उनके शरीर पर सफ़ेद वस्त्र हैं। उनके इसी वेश से वह अधिक परिचित है। वह वेश, उसे हृदय के अधिक निकट और अपना दीखता

है। परन्तु आज, गेरुए से सफ़ेदी का यह परिवर्त्तन देखकर उसे भारी विस्मय भी हो रहा है।

एक क्षण के लिए उसका चेहरा ग़ुस्से से भर आया। दरवाज़ा खोलने के लिए वह नीचे नहीं उतर सकी। परंतु जब योगिनी माँ नीचे उतरीं तो उनसे उसने दरवाज़ा खुला ही रहने देने के लिए कहा।

सचिता के साथ, रविशंकर के ऊपर आने पर वह एक कमरे में चली गई। बच्चा वहीं लेटा रहा। वह इस समय भी हाथ पाँव ऊँचे उठा उठाकर, हँस रहा है। आवश्यकता से भी अधिक सावधानी से रविशंकर ने उसे अपनी गोद में उठा लिया।

आज उनके चेहरे पर किसी तरह के संघर्ष का चिह्न नहीं है। वहाँ अद्भुत शांति है। अपने चारों तरफ़, उन्होंने अपने 'अकेलेपन' की रक्षा के लिए जो व्यूह बना रखा था, वह टूट चुका है। उसके साथ ही साथ 'श्मशान' को प्यार करने की भी उनकी प्रवृत्ति जाती रही है।

दीपा को देखकर भी, उनके चेहरे पर आज बहुत दिनों पहले की सी स्वाभाविक हँसी आती है। इसमें दीपा को अपनी विजय दिखाई पड़ी। धीरे-धीरे आकर उसने उन्हें प्रणाम किया।

तब भी, उन्हें एक दूसरे की आँखों में देखने का साहस नहीं हुआ। दोनों की दृष्टि उस बच्चे पर ही अटकी रही। वही उन दोनों के बीच, एक दूसरे के विचार और भावों के समझ पाने का माध्यम बन गया है।

भोला माझी, जब जब नाव लेकर आता है तो दियारे से दीपा के लिए कुछ न कुछ सौग़ात और वहाँ के बहुत से नये समाचार ज़रूर लेता आता है। जिस बार जल्दी में होता है, और नहीं तो कुछ चने का साग और मटर की फलियाँ ही दीपा के घर पहुँचा जाता है। इधर, ककड़ी, ख़रबूज़ों का मौसम आने पर तो वह टोकरियाँ भर-भरकर

ये चीज़ें लाने लगा है। घर की वे वस्तुएँ दीपा को अपने बचपन की याद दिलाती हैं। कितनी बार वहाँ का दृश्य और वहाँ के लोगों की याद आने पर उन्हें देखने के लिए, उसका मन उदास होने लगता है।

इस बार, सुजान पंडित ने भोला माझी की मार्फ़त संवाद भेजा है। उनकी एकांत इच्छा है कि दीपा घर लौट आए। उनकी दृष्टि से, उसकी तथा उसके बच्चे की देख-रेख, दियारे में ही भली भाँति हो सकती है।

'लेकिन गाँववाले?' सचिता ने भोला माझी से पूछा—'वे तो अब भी उसकी ओर उँगली दिखाकर छीः छीः करेंगे?'

'अरे नहीं बाबू!' माझी ने अपनी स्वाभाविक मस्ती में सिर हिलाते हुए कहा—'हमारे यहाँ के लोगों को तुम उतना गिरा हुआ मत समझो! तुम वहाँ बहुत दिनों से नहीं गए हो! अब हमारे गाँव की तो बात ही छोड़ो, हमारा सारा इलाक़ा ही 'सुराजी' हो गया है।

'सुराजी?'

'हाँ, हाँ, सुराजी!' भोला माझी इधर 'सुराज' के हल्ले में बहुत से नए शब्द भी सीख गया है। अपनी बातों में वह उनका भी व्यवहार करने लगा—'धन्य हैं मठिया के बाबा! हमारा सारा इलाक़ा उनके ही इशारे पर चलता है। इस बिटिया के बारे में भी गाँववालों का भ्रम उन्होंने ही दूर किया। उन्होंने ही कहा—'इसके पति अपने स्वार्थ के लिए नहीं बल्कि देश के काम में जेल गए हैं। वैसे, दूसरों का उपकार करनेवाले लोग, यदि अपने परिवार, धन, प्राण को हथेली पर रखकर जेल न जाते तो किसानों के ऊपर ऐसे अत्याचार होते कि उनकी ज़िन्दगी गधों से भी बदतर हो जाती। लेकिन गाँववालों ने वैसे ही धर्मात्मा की धर्मपत्नी को अपने गाँव में आश्रय नहीं दिया। उसे आपत्ति के समय लांछित और तिरस्कृत किया! कलंक का धब्बा उस

नारी पर लगाने की चेष्टा में कलंक के असली पात्र तो हमारे इस गाँव-वाले ही बन गए !' फिर बाबा इस बिटिया की तारीफ़ करने लगे—'पवित्र और उदार चित्त की होने के कारण ही इसमें ऐसी शक्ति है कि यह सब तरह के अत्याचार ख़ुशी-ख़ुशी बर्दाश्त कर लेती है। इलाक़े की ऐसी साहसी संतान का सबको गर्व होना चाहिए। और वैसी माँ का लड़का तो सारे गाँव का सिर ऊँचा करनेवाला होगा।' तभी से हमारे गाँव की हवा बदल गई है। अब सुजान पण्डित से अकसर लोग पूछते हैं—'बिटिया कब लौट रही है ?'

दीपा का चेहरा अपना नाम सुनकर तमतमा आया। यह कल्पना है या वास्तविकता—वह निश्चय नहीं कर सकी ! वह उठकर घर के भीतर चली गई।

भोलाभाभी सचिता को अपने गाँव के और भी समाचार सुनाता रहा—'अब तो वहाँ भारी यज्ञ होनेवाला है !'

'कैसा यज्ञ ?'

'बाबा की मठिया में ही होगा। अभी शायद कुछ महीने की देर है, पर उसकी तैयारी अभी से होने लगी है। यह शायद कोई सुराजी यज्ञ होगा। बाबा ने सबको कह रखा है कि इस गंगा की मिट्टी ने जितने लोगों को पाला पोसा है, सबको इस यज्ञ में शामिल होना चाहिए।'

'तब तो हम लोगों को भी वहाँ एकत्र होना चाहिए ?'

'ज़रूर ! बाबा तुम लोगों को ही तो सबसे अधिक मानते हैं। तुम्हारा न जाना तो अन्याय होगा !'

'लेकिन हमें लोग पुलिस के हवाले तो न कर देंगे ?'

'वे दिन गए—' भाभी अपनी बातों पर ज़ोर दे कहने लगा—'अब मामूली किसान भी अपना नफ़ा-नुक़सान समझने लगे हैं। हम जान गए हैं कि सुराजी हमारे ही हित के लिए लड़ते हैं। अब हम सुराजियों से

डरने के बजाए सुराज की लड़ाई में खुद ही आगे आने के लिए तैयार हो रहे हैं। अब तो हमारे इलाके में बहुत से आला-आला पढ़े लिखे सुराजी घूमा करते हैं। लोग उन्हें इज्जत की दृष्टि से देखते हैं और खुशी खुशी अपने यहाँ ठहराया करते हैं।'

'और दारोग़ा उन्हें धमकाता नहीं ?'

'दारोगा ? हम क्या चोरी करते हैं कि उनकी धमकी से डरें ? हम जो करते हैं खुले आम करते हैं !'

'तब तो हम जरूर बाबा के यज्ञ में शामिल होंगे हम तुम्हारे साथ ही चलेंगे !' कहकर वह चलने की तैयारी करने लगा।

जिसका नाम वे 'सांसारिक जीवन' दिया करते थे और तुच्छ समझते थे, फिर उसी में वापस आ जाने पर भी रविशंकर के मन में किसी प्रकार का पश्चात्ताप नहीं है। अब वे उसे अपने आदर्श, शान या कार्य-योजना में बाधक नहीं समझते बल्कि आवश्यक और स्वाभाविक मानने लगे हैं।

बाबा के सुराजी यज्ञ में सम्मिलित होने की बात वे सोच ही रहे थे, उसी समय, उनके शरीर से किसी वस्तु का स्पर्श हुआ। बच्चा उलटता-पुलटता उनके पास तक पहुँच गया है। अब वह उनका पाँव पकड़कर ऊपर उठने की कोशिश कर रहा है। रविशंकर ने उसे गोद में उठा लिया। उसके चेहरे पर दृष्टि जाते ही उन्हें मालूम पड़ा मानों उनके सामने निश्चय करने योग्य कोई समस्या है ही नहीं ! सब कुछ बहुत पहले ही निश्चय हो चुका है।

वे बच्चे को ऊपर उछालने लगे। उनका मन बोला—'इसकी ज़िम्मेदारी मेरे ऊपर है। इसे अपनी तरह कष्ट भोगने न दूँगा। इसके सुख और आज़ादी के लिए मुझे लड़ना है !

और तब, वे उत्सुकता-पूर्वक अगले दिन की प्रतीक्षा करने लगे।

बहुत तड़के ही, भोला माझी ने उनके घर के सामने अपनी नाव लगा दी। मौसम देखते हुए, हवा पर बहुत अधिक भरोसा नहीं किया जा सकता। अभी वह अनुकूल है पर एक क्षण बाद ही पलट सकती है। इसीलिए, अनुकूल हवा रहते-रहते, माझी शहर के बाहर पहुँच जाना चाहता है।

माझी की दलील सयाने लोग मान लेने के लिए तैयार हैं, पर बच्चा नहीं है। योगिनी माँ उसे अपनी गोद में घाट तक लेती आई हैं। अब वह नाव पर से अपनी माँ के बुलाने पर भी जाने को तैयार नहीं। योगिनी माँ से अलग होते ही वह हाथ-पाँव पटकने लगता है।

अन्त में, योगिनी माँ को भी नाव पर सवार होना पड़ा। भूख लग आने पर बच्चा अपनी माँ के पास गया। जब वह दूध पीने लगा तब योगिनी माँ चुपके-चुपके नाव से नीचे उतर आईं।

नाव खुल गई।

योगिनी माँ किनारे से उन्हें देखती हैं। बीच धारा में पहुँच जाने पर बच्चा माँ की गोद से उन्हें बुला रहा है। योगिनी माँ ने भी उसे लेने के लिए हाथ बढ़ाए। उनके हाथ और पाँव काँपने लगे, मानो वे उसे अपनी गोद में ही खिला रही हों।

गंगा का प्रवाह उसे दूर खींचे लिये जाता है। योगिनी माँ को वह शिशु अत्यन्त छोटा दिखाई देने लगा। ठीक उसी दिन जैसा जब उसका जन्म हुआ था।

वे एक-दूसरे को देखते रहे। साथ खेलते रहे। बातें भी करते रहे। उन दोनों को अलग कर सकने की सामर्थ्य गंगा के प्रवाह अथवा आपस की दूरी में भी नहीं है।

पड़ाव

गंगा के दियारे का एक किनारा।

यहाँ मुसीबतों की कभी कमी नहीं रहती। यहाँ बसनेवाले आदमियों की सृष्टि ही सम्भवतः प्रकृति से संघर्ष करते रहने के लिए ही हुई है। ये तरंगों की तरह उठते और गिरते हैं, लेकिन उनकी जीवन-धारा गंगा की धार की भाँति हमेशा आगे ही चलती रहती है।

यहाँ की ज़मीन रेतीली होने के कारण उपजाऊ नहीं बन पाती। आँधियाँ और बाढ़ जैसे प्रकोप लगे ही रहते हैं। फूस के घर अकसर ही आँधी में उड़ जाते हैं, पर नये तैयार करने में लोगों को देर नहीं लगती। गंगा जी ज़मीन काटकाट कर आदमियों की बस्ती मीलों पीछे हटा देती हैं, पर यहाँ के विकट लोग हार नहीं मानते। गंगा जी का कोप शांत होते न होते लोग उनके कछारों पर फिर से बस जाते हैं। आदमियों का उत्थान-पतन बहुत अंश में गंगाजी पर निर्भर रहने पर भी उनके विरुद्ध संग्राम में आख़िरी जीत हमेशा आदमियों की ही होती है।

शताब्दियों का संग्राम इस प्रदेश तथा इसके निवासियों के चेहरों पर अपने चिह्न अंकित करता रहा है। विशेषतया गंगा स्वयं अपने हाथों से

इस धरती तथा यहाँ के पत्ते पत्ते और लोगों के रोम रोम पर, प्रकृति के साथ तथा परस्पर चलनेवाले उनके संघर्ष का इतिहास लिखती गई हैं। गंगा की उस विचित्र तूलिका द्वारा, इस दियारे के चित्रपट पर इसी प्रदेश में अभिनीत अनेक सुन्दर और अद्भुत लीलाओं के चित्र दिखलाई देते हैं।

संध्या घिर आने पर उन्होंने एक घाट पर नाव लगा दी।

आकाश में सफ़ेद बादल छा रहे हैं। उन्हीं के बीच में सम्भवतः कहीं पर चाँद भी छिपा है। कभी कभी उसकी प्रकाश-किरणें बादलों को भेदकर झिलमिल करती हुई निकल आती हैं।

उसी प्रकाश में माझी और मुसाफ़िर नाव की छत पर जा बैठे हैं। हाथों से एक चुटकी तमाखू थपथपाकर उसे होंठ में दबाते हुए भोला माझी ने पुकारा—'सोनियाँ !'

कोई जवाब न पाकर वह तुरत ही हँसता हुआ कहने लगा—'आ······एक साल पहले मैंने उसकी शादी कर दी, पर अब भी उसकी याद नहीं भूलती।'

फिर वह उसके बचपन से लेकर विदा करने के दिन तक की बहुत सी बातें बतलाने लगा। ये बातें उसने सैकड़ों दफ़े बतलाई होंगी, फिर भी उसे तृप्ति नहीं होती। गंगा पार की एक दिशा में संकेत करते हुए उसने कहा—'वह वहाँ! उस दियारे में उसकी ससुराल है।'

वह पहचानने की कोशिश करने लगा पर ढूँढ़ने पर भी वहाँ उसे सोनियाँ दिखलाई नहीं पड़ी। थोड़ी देर बाद झुँझला कर उसने कहा—'पता नहीं दयाल उसे कैसे रखता होगा? वह अगर अपने बाप दादों की तरह नाव चलाता तो मुझे कोई चिन्ता न थी परंतु उसने तो खेती का धन्धा कर लिया है। माझी होकर खेती? मुझे तो अगर कोई

सोने का बँगला ज़मीन पर दे दे तब भी मैं अपनी नाव नहीं छोड़ सकता। गंगाजी के आसरे से मैं हट नहीं सकता। भला हमारी इस ज़िन्दगी के सुख को और कोई पा सकता है ?'

'माझी ! माझी !' किनारे पर से किसी ने पुकारा। भोला ने देखा किनारे पर एक डोला आ उतरा है। एक दुलहिन उसके पटरों की फाँक से झाँक रही है। उसके स्वामी डोले के पास खड़े हैं। वे भी गहनों से लदे हैं। देह भी उनकी थलथल है। देखते ही पहचान में आ जाते हैं—हमेशा गद्दी पर बैठे रहनेवाले कोई सेठ होंगे। उन्होंने भोला से कहा—'पार ले चलो !'

'यह नाव पार जानेवाली नहीं !'

'पर दूसरी और कोई नाव भी तो नहीं ?'

'अब कल सबेरे मिलेगी।'

'नहीं, नहीं ! तुम्हें अभी चलना पड़ेगा।'

'पार जाने के लिए गुन खींचकर इसे मील भर ऊपर ले जाना पड़ेगा। इतनी बड़ी नाव खींचेगा कौन ? और वह भी इस समय, भरी गंगा में ?'

'तुम लोग बड़े शैतान हो ! मेरा बस चले तो—'

'जाओ, जाओ !' भोला माझी को भी गुस्सा आने लगा—'यहाँ कोई तुम्हारा नौकर नहीं !'

डोलेवालों के समझाने पर सेठजी को भी विश्वास हो गया कि उस समय पार उतरना संभव नहीं। पास के ही एक झोपड़े में उन्होंने डेरा डाला। डोलेवाले और नौकरों को साथ लेकर रात बिताने के लिए वे अपने गाँव के रिश्तेदारों के यहाँ चले गए।

उनकी ओर से निश्चिंत होकर भोला फिर अपनी अधूरी कहानी कहने लगा। दूसरे लोग उसे टोकने के बदले सिर्फ़ हुँकारी भरते जाते

हैं। कुछ देर बाद अपने सुख से तृप्त होकर उसकी आँखें झिपने लगीं। बात ख़त्म करते न करते वह ख़र्राटे लेने लगा।

अब बादलों की चादर में लिपटा हुआ चाँद भी मानो सो गया है। किसी पक्षी की भी आहट नहीं आती। मटमैली चाँदनी में वृक्ष, पौधे, झोपड़े सब आँखें बन्द किए जैसे दीखते हैं। केवल हवा, आधी आँखें बन्द किए उनींदी-सी इधर-उधर टकराती चल रही है।

नाव पर के लोग भी सो गए हैं। छत पर थके माँझी फोंक काट रहे हैं। उनके पास ही, रविशंकर और रञ्चिता भी, बहुत दिनों के बाद, निश्चित होकर सो रहे हैं। नाव के भीतर, माँ की छाती और उससे चिपके हुए बच्चे का निःश्वास एक ही ताल में चढ़ता उतरता है।

इस मुहूर्त्त में किसी प्रकार के अनिष्ट की किसी को भी आशंका नहीं है। सबकी आकांक्षाएँ मानों पूर्ण हो गईं जान पड़ती हैं। अपना आगे का पथ सबको निरापद दीखता है। इस वातावरण में सबको प्रतीत होता है जैसे संसार भर के मनुष्य एक-दूसरे को प्रेम करते रहने के लिए ही बनाए गए हैं।

परंतु ठीक इसी समय, उस किनारे पर कुछ ऐसी घटनाएँ घटीं जिन्होंने रविशंकर आदि की आगे की यात्रा की दिशा ही पलट दी।

जिस मड़ैया में सेठजी टिके हैं, कुछ आदमी उधर ही बढ़ते आ रहे हैं। उनके पाँव बालू पर पड़ते हैं, इस कारण उनके चलने की आहट नहीं मिलती। वहाँ केवल सेठजी के सोए रहने की 'सों-सों' आवाज़ आ रही है। उन आदमियों के पास पहुँच जाने पर एक बार 'खक्' हुआ और फिर सेठजी 'म्-म्-म्' करने लगे। एक आदमी का हाथ उनके गले पर पहुँच गया है।

सेठजी जग पड़े। भय से उनकी घिग्घी बँध गई। अस्पष्ट स्वर में

वे गिड़गिड़ाने लगे—'जान......जान न लो ! और जो चाहो ले जाओ !'

'चुपचाप अपने सब गहने दे दो।'

सेठजी ने तुरंत ही अपने गहने उन्हें दे डाले।

'दुलहिन के गहने लाओ !' किसी ने उन्हें हुक्म दिया। भय से उनके पाँव लड़खड़ाने लगे। फिर भी वे दुलहिन के पास गए। वे पहले से ही अपने गहने उतारे दे रही है। घूँघट बिना उठाए ही उसने अपने सब गहने सामने रख दिए।

चोर, गहने लेकर चलते बने। उनके चले जाने पर भी, उनके आदेशानुसार सेठ-दंपति आँखें मूँदे पड़े रहे। निस्तब्धता भी अब उन्हें काटने दौड़ती है।

बहुत देर बाद जब साहस कर उन्होंने आँखें खोलीं तो बालू, झाड़ी, वृक्ष, नाव, सब उन्हें लुटेरों और हत्यारों के रूप में दिखाई देने लगे।

अगले दिन, तड़के उठकर ही उन्होंने नाव खोलने की तैयारी की। पर लंगर के पास एक चौकीदार आकर खड़ा हो गया। उसके हाथ में लंबी लाठी है। उसने लंगर उठाने की मनाही कर दी।

सेठजी भी अपनी दुलहिन के साथ वहीं आ गए हैं। ज्यों ज्यों प्रकाश होता जाता है, दुलहिन अपना मुँह छिपाती जाती है। सेठजी उसी अनुपात में बकवादी बनते हुए अपना बहादुर होना साबित कर रहे हैं। दुलहिन के अलंकार-विहीन अंगों की ओर देखकर वे नाव पर के लोगों की तरफ़ इशारा करके कहने लगे—'ये सब के सब लुटेरे हैं। ये ही कल रात को हमारे सब गहने छीन ले गए हैं। मैं इन्हें पहचानता हूँ।'

'यह कैसी आफ़त ?' भोला माझी रविशंकर की ओर देखकर पूछने लगा। उन्हें भी कुछ पता नहीं।

'ग़नीमत कहो कि हमारे हाथ में कोई पिस्तौल नहीं था!' सेठजी नाव के लोगों को धमकाते हुए कहने लगे—'अगर मेरे हाथ में एक छुरा भी होता तो इन सबका मैं अकेला ही ख़ून कर देता।'

'हम लोगों ने क्या किया है, सेठजी?' भोला माझी ने उनसे पूछा।

'चोर कहीं के!' सेठजी दाँत पीसने लगे—'जैसे ये कुछ जानते ही न हों!'

'गंगाजी में हूँ।' भोला हाथ उठाकर कहने लगा—'सच कहता हूँ, कुछ नहीं जानता।'

'ये सब अव्वल दर्जे के शैतान हैं!' सेठजी अपनी दुलहिन को दिखाकर पैंतरा बदलते हुए कहने लगे—'रात में डाके डालते हैं और दिन में गंगा नहाकर शरीफ़ बन जाते हैं! मेरी चले तो यहाँ के किनारे पर के पूरे गाँव के गाँव जला दूँ। इस इलाक़े के सब लोगों को —बाल बच्चों तक को—भट्टी में झुकवा दूँ।'

उस चौकीदार से ही पिछली रात का सारा वृत्तांत मालूम हुआ। जो लोग सेठजी को लूटने आए थे, उनमें उस घाट-किनारे के बाज़ार के कई आदमी ऐसे थे जिनका नाम पुलिस के पास बदमाशों के रजिस्टर में दर्ज रहता है। ग़श्त में निकलनेवाले सिपाही अकसर रात में जगाकर उनकी हाज़िरी लिया करते हैं। पिछली रात में वे कई बदमाश ग़ैरहाज़िर थे। सिपाही उनके दरवाज़ों पर छिपकर बैठ गए। जब बदमाश घर लौटे तो वे गिरफ़्तार कर लिए गए। कई तमाचे खाने पर उन्होंने सेठ-जी के गहने लूटने और उधर ही, गंगा-किनारे छिपा देने की बातें बतलाईं। सिपाही उन्हें पकड़कर सेठजी के पास ले आए। सेठजी उन आदमियों को पहचानने में हिचकते रहे। वे भी थाने पर गए। उनके कथनानुसार जिन्होंने उनसे गहने छीने थे, उनमें वे पढ़े-लिखे लोग ज़रूर थे जिन्हें उन्होंने पिछली संध्या को भोला माझी की नाव पर देखा था।

आगे के और विवरण का पता सेठजी की बातों से भी लगाया जा सकता है। घाट से पुलिस चौकी अधिक दूर नहीं। सेठजी के वहाँ पहुँचने पर दारोग़ाजी जगाए गए। पढ़े-लिखे लोगों का लूट में शामिल होना सुनते ही उन्होंने बहुत से गुप्त रहस्यों का अनुमान लगा लिया। अपने इलाक़े में 'बमवालों' के पहुँचने की ख़बर उन्हें पुलिस गज़ेट द्वारा पहले ही लग गई थी। अभी अभी, वे उसी संबंध का कोई स्वप्न भी देख रहे थे।

फिर क्या था, पिछले महीनों में उनके इलाक़े में जितनी भी चोरी-डकैती हुई थी उन सबमें 'बमवालों' का हाथ उन्हें साफ़ दिखाई देने लगा। ज़रूरत केवल उनमें से दो-चार को पकड़कर उनसे अपराध स्वीकार कराने के पश्चात् सब बातें प्रमाणित करा देने की रह गई थीं। इस मामले के राजनैतिक प्रमाणित हो जाने पर दारोग़ाजी को अपनी तरक़्क़ी के साथ ही साथ 'बमवालों' की गिरफ़्तारी पर घोषित इनाम की रक़म भी ललचाने लगी।

वे यह मौक़ा कैसे चूकते? बात की बात में उन्होंने आगे की कार्रवाइयों का सारा ख़ाका खींचकर जगह-जगह ज़रूरी काम से अपने सिपाही रवाना कर दिए। उन्होंने ही चौकीदार को नाव के माझी से यह कहने के लिए आगे दौड़ा दिया कि—'हुज़ूर जाँच के लिए ख़ुद आ रहे हैं। जब तक वे पहुँच न जाएँ नाव टस से मस न हो!'

वर्षा के टिपटिप के बीच, बूट-जूतों का भी 'टप-टप' स्पष्ट सुनाई दे जाता है। यह आवाज़ क्रमशः तीन दिशाओं से निकट आती जान पड़ती है। चौथी दिशा में स्वयं गंगा हैं। आज फिर उनकी गरज हुंकार का रूप धारण कर रही है।

'वे हमें पकड़ने आ रहे हैं!' उन तीनों के मन में एक साथ ही आशंका उठी। पकड़ जाने का विचार आते ही उनके पाँवों में अद्भुत

फ़ुर्ती आ गई। अभी कुछ ही देर पहले, उनके पाँव लड़खड़ा रहे थे, पर अब 'टप-टप' की आवाज़ सुनते ही हवा से बाज़ी लगाने के लिए तैयार हो गए। उनके मस्तिष्क भी बड़ी तत्परता से काम करने लगे।

अपने बचाव के लिए चारों ओर दृष्टि दौड़ाने पर उनकी नज़र अपनी बड़ी नाव के पीछे बँधी हुई डोंगी पर गई। इस समय वह ख़ाली की ख़ाली गंगा की लहरों से खेल रही है। सबसे पहले दीपा ही बच्चे को आँचल में छिपाए उस पर जा उतरी। भय द्वारा उत्पन्न शक्ति के ही सहारे इस समय उसमें अद्भुत तेज़ी आ गई है।

अब उनका कोलाहल बहुत नज़दीक आ गया, रविशंकर और सन्चिता दोनों की ही दृष्टि उधर है। कई सिपाही उनकी ही ओर बंदूक की नली आगे किए बढ़ते आ रहे हैं। उन नलियों से चिनगारी निकलने भर की देर है!

ऐसे ख़तरे के मौक़ों पर अपनी रक्षा का उपाय ढूढ़नेवालों को प्रकृति का भयावना से भयावना स्वरूप भी आदमियों से कम खूँख़ार जँचता है। उन्हें भी इस समय गंगा ही अपनी ओर निमंत्रित करती जान पड़ी।

वे दोनों भी डोंगी पर आ गए। डोंगी डाँवाडोल होने लगी। सन्चिता ने बड़ी नाव से बँधी रस्सी खोल दी। भँवर ने डोंगी को एक बार नचा दिया। लहरें उन्हें झूला झुलाने लगीं। फिर धारा उन्हें तीर की तरह खींच ले चली।

आश्रय

वे बह चले ।

चारों तरफ़ पानी । हरियाली और मेघ नृत्य बंद करके बरसाती कुहासे के परदे में छिप रहे हैं । किनारे की पगडंडी से पीछा करनेवालों की 'हो...ओ...ओ ..ओ' आवाज़, पता नहीं कहाँ विलीन हो चुकी है । सुनाई दे रहा है अब केवल पानी का 'चल.. चल...।' यह किसी अन्य लोक में बजनेवाले संगीत की प्रतिध्वनि जैसी मालूम पड़ती है ।

निर्धारित दिशा में डोंगी बढ़ा ले चलना आसान नहीं है । हवा और प्रवाह, दोनों ही उनकी डोंगी के साथ खींचा-तानी करने लगे हैं । बीच-बीच में डोंगी फिरकी की तरह नाच जाती है । लहरें उन्हें भिगो देती हैं । डोंगी में पानी भर आता है । वे उसे हाथों से उलीचने लगते हैं । रविशंकर कहते हैं—'खेते चलो ! खेते चलो !'

कल शाम से ही उन्होंने गंगाजी को और भी विकराल रूप धारण करते देखा है । उनके प्रवाह में प्रचंड वेग है । कोई भी बाधा उनके सामने टिक नहीं पाती । मैदान, जंगल, पहाड़ जो भी सामने आया, उसे चीरती हुई वे आगे बढ़ जाती हैं । उनकी लहरों से किनारे थर्रा

रहे हैं। जब वे लहरें अपनी भुजाएँ फैलाती हैं तो बड़े-बड़े वृक्ष भी उनके पाश में सिमट आते हैं।

उन लहरों से ही डोंगी उलझती चली जा रही है। उस किनारे पर लहरों ने उसे केवल थपथपाया था, इस किनारे पर वे उसे गेंद की तरह उछालने लगी हैं। कभी-कभी जान पड़ता है, वे उसे बीच गंगा में ही उलट देंगी।

एक ओर से प्रपात की-सी आवाज़ आ रही है। पानी के रास्ते में शायद कोई ऊँचा टीला बाधा पहुँचा रहा है। पानी उस टीले के कंधे से झूल रहा है। अपने भार से वह उसे नीचे दबाना चाहता है। उसे राह से दूर करने के लिए स्वयं गंगा वहाँ भीषण हुंकार कर रही हैं। डोंगी उसी दिशा में बह चली।

बड़ी मुश्किल से वे दिशा बदलने में सफल हुए। उनके हाथों में छाले पड़ गए हैं, फिर भी नाव खेना वे बंद नहीं करते। वे थक गए हैं परंतु थकावट अनुभव करने का भी उन्हें अवकाश नहीं। उनकी शक्ति जिस समय जवाब देने को तैयार होती दिखाई पड़ी, उसी समय आवाज़ हुई—'खिस् ।' नाव किनारे से जा लगी।

वे नीचे उतर आए। मिट्टी में उनके पाँव धँसने लगे, परंतु जिस ओर ज़मीन ऊँची होती गई थी उसका अंदाज़ भी उन्हें मिलने लगा। कुहासा दूर हो चुका था। उन्हें अब दूर तक साफ़ दिखाई देता है।

थोड़ी दूर पर, उन्हें आदमियों का कोलाहल सुनाई दिया। पहले उसे भी उन्होंने गंगा के कलकल की ही एक प्रतिध्वनि समझा परंतु तत्काल ही उन आदमियों की बोली उनकी समझ में आने लगी।

वे किसान हैं। फटे कंबलों की घुग्घी से उनके सिर और पीठ ढकी है। कमर में अँगौछे जैसे टुकड़ों के काछे बँधे हैं। हाथों में फावड़े लिये प्रकृति से टक्कर लेने वे बाहर निकले हैं।

गंगाजी के पानी से उनके गाँव को बचानेवाला बाँध पुराना पड़ गया है। जगह-जगह पानी ने उधर से पैठने के दरवाज़े बनाना शुरू कर दिया है, किसान उन्हीं दरवाज़ों को बंद करने में लगे हैं। जहाँ कहीं भी पानी फूटने लगता है वे वहीं नई मिट्टी डालकर बाँध मज़बूत कर देते हैं। अपने इस मोर्चे को अटूट रखने के लिए वे दिन-रात पहरा दिया करते हैं।

सच्चिता उनके सामने पहुँचा। उनसे गाँव का नाम पूछा, फिर दयाल का पता। एक किसान-युवक अपनी छुग्वी हटाकर आगे आया। उससे सच्चिता ने कहा—'भोला माझी ने हमें यहाँ भेजा है!'

और अधिक परिचय की आवश्यकता नहीं पड़ी। कई किसानों ने एक ही साथ उस युवक से कहा—'ये पानी से सराबोर हो गए हैं। इन्हें घर ले जाओ!'

'तुम भी सुराजी हो भैया?' रास्ते में उस युवक ने पूछा।

सच्चिता ने हुँकारी भरी।

'मैं भी हूँ!' युवक ने गर्व के साथ कहा—'मुझे लोग सुराजीदयाल कहते हैं। जो सुराजी इस शीतल दियारे में आते हैं, हमारे ही घर ठहरते हैं।' फिर उसने अपने सुराजी होने की पूरी कहानी कह सुनाई।

वह नदी पार के सोनारपुर बाज़ार में अक्सर सब्ज़ी बेचने जाता है। उसी से उसके परिवार का नमक, तेल और कपड़े का ख़र्च चलता है। जब तक सुराज का हल्ला नहीं हुआ था, उसे दिक़ करनेवालों का ताँता, उस पार के किनारे से लेकर बाज़ार तक लगा रहता था। घट-वार तो सिर्फ़ दो-चार परवल वा कुन्दरू लेकर ही छोड़ देते थे, परंतु पुलिस चौकीवाले रोज़ अपने खाने भर की सब्ज़ी लेने के अतिरिक्त बिक्री के पैसों में भी छीन-झपट किया करते थे। इतने पर भी बर्दाश्त करनी पड़ती थी उसे—बेगार, गाली और बेइज़्ज़ती!

तब आए एक दिन सुराजी बाबू! उनके सिर पर गाँधी टोपी

थी। वे सब्ज़ी ख़रीद रहे थे। उसी समय दयाल की टोकरी में एक सिपाही ने हाथ लगाया। सुराजी बाबू ने सिपाही का गला पकड़कर कहा—'रख दो!'

'दरोग़ाजी के लिए है!' सिपाही ने कहा।

'उनके बाबा ने तो नहीं उपजायी।'

दयाल के लिए यह बिलकुल नई बात थी। वह अब प्रतिक्षण सिपाही का डंडा बाबू के सिर पर पड़ने की आशंका कर रहा था। परंतु नहीं, सिपाही ने सिर उठाकर देखा। शायद गाँधी टोपी पर उसकी निगाह पड़ी। वह चुपचाप वहाँ से चला गया। दयाल को वह टोपी जादू-भरी दिखाई पड़ी।

अगले दिन बाज़ार में सुराजी बाबू फिर दिखाई दिये। उनके चारों ओर भीड़ लगी थी। वे चिल्लाकर कह रहे थे—'किसान उपजाते हैं। सरकार और ज़मींदार उन्हें लूट लेते हैं। किसान भूखों मरते हैं। यह लूट बन्द करने के लिए ही हम सुराज—अपना राज चाहते हैं। सुराज होने पर, सब ज़मीनें किसानों के बीच बाँट दी जाएँगी।'

दयाल को मालूम पड़ा मानो सुराजी बाबू उसी की ओर देखकर वे बातें कह रहे हैं। उनकी बातें ज़रूर सच निकलेंगी। ज़मीन! दयाल का ध्यान उसी ओर गया—'अगर उस डीह की ज़मींदारवाली ज़मीन मिल गई! बाज़ार में छीना-झपटी मही हुई! तब तो एक बार की ही उपज में सोनियाँ को गहनों से लाद दूँगा। वह हँसली चाहती है, अभी जो है, उससे भारी। मैं उसे करधनी, बिजावठ और पाएजेब बनवा दूँगा। हमारी पँड़िया के गले में भी सुनहली घंटी डोलेगी। जरा सुराज हो तो!'

अपनी कल्पना में उसे उसी समय अपनी पँड़िया के गले में पड़ी घंटी की 'टुन-टुन' सुनाई देती है। सोनियाँ भी उसे गहनों से लदी दिखाई देती है। उसका चेहरा भी खिल उठा है। बजाज की दूकान

के सामने से जाते समय दयाल उसके लिए साड़ी भी पसंद करने लगा। कोई भी साड़ी उसे ठीक नहीं जँच रही है। रास्ते में एक दुलहिन पालकी में बैठी जा रही है। दरवाज़ों की फाँक से उसकी लाल साड़ी दिखाई दे जाती है। उस पर रुपहले बूटे कढ़े हैं। दयाल ने तय किया—'ठीक ऐसी ही साड़ी ख़रीदूँगा! यह सोनियाँ पर ख़ूब खिलेगी!'

'ए! परवल क्या भाव?' ठीक उसी समय किसी ने उसे टोक दिया।

'चार पैसे सेर!'

'लुटेरा कहीं का!'

'सरकार और ज़मींदार लूट लेते हैं—' दयाल के मन में अब भी यही गूँज रहा है। मन-ही-मन वह प्रतिशोध लेने की बात भी सोचता है—'अच्छा! सुराज हो ले! फिर लुटेरा कहने का मज़ा चखा दूँगा!'

जब कभी सुराजी जलसे होते हैं; दयाल ज़रूर शामिल होता है। वहाँ वह गाँधी टोपियों की भरमार देखता है। वैसे लोगों की सब इज्ज़त करते हैं। पुलिसवाले तक उन टोपियों से भय खाते हैं। दयाल उसे ही सुराज की निशानी मानने लगा।

एक दिन वह खद्दर भंडार पर जा खड़ा हुआ। उस दिन सब्ज़ी बेचकर उसे कुल सात आने पैसे मिले थे। उनमें से ही एक चवन्नी फेंककर उसने टोपी ले ली। उसी दिन से वह सुराजी बन गया।

टोपी सिर पर रखते ही दयाल के चेहरे पर शान आ गई। गाँव में पहुँचते ही कई आदमी उसका रास्ता छोड़कर किनारे खड़े हो गए। स्कूल में पढ़नेवाले लड़के कहने लगे—'यह गाँधी टोपी है। सुराजी पहना करते हैं। दयाल सुराजी हो गया!'

सारा गाँव ही उसे सुराजी दयाल कहने लगा। अब जलसों में वह आगे जाकर बैठता है। बाहर से यदि भूला-भटका कोई सुराजी उस दियारे पर आ निकलता है तो दयाल ही उसे अपने यहाँ ठहराया

करता है। जुलूस निकलते हैं तो झंडा उसी के हाथ में रहता है। 'वन्देमातरम्' का गीत गाते समय उसी की आवाज़ सबसे बुलंद रहती है। वह सुर उसे याद हो गया है। साथ ही इतना प्रिय भी लगने लगा है कि फावड़ा चलाते, खेत अगोरते और नौका खेते समय भी वही गीत गुनगुनाया करता है। गाँधी टोपी भी हमेशा उसके सिर पर ही रहती है।

जुलूस-जलसों में अधिक भाग लेने के कारण इन दिनों वह कुछ दिलचस्पी बाहरी दुनियाँ की ख़बरों में भी लेने लगा है। यदि वैसी ख़बरों के सुनने का उसे कभी सुयोग मिलता है तो वह चूकता नहीं। सञ्चिता और रविशंकर को अपने दरवाज़े पर बिठाते-बिठाते वह पूछ बैठा—'अच्छा! काशी में सुराज का कैसा ज़ोर है?'

उन्होंने उसे राजनैतिक डकैतियों और ख़ुफ़िया लोगों पर आक्रमण होने की बातें बतलाईं। परंतु उनसे दयाल को संतोष नहीं हुआ। उसने कहा—'यह नहीं, मैं पूछता हूँ कि जमींदार की जमीन कब बँटेगी? लगान-बन्दी कब होगी?'

'उसमें तो अभी देर है।'

'तब डकैती और खून से मुझे कोई मतलब नहीं?' कहकर वह अपनी पँड़िया देखने चला गया।

दीपा भीतर आँगन में आई। सोनियाँ उसे देखते ही लिपट गई। दोनों बचपन से ही सखी रही हैं। आज बहुत दिनों के बाद मिली हैं, इसी से उनकी बातों का ताँता शुरू हो जाने पर बहुत देर तक ख़तम नहीं हुआ। दीपा काशी की एक नई दुनियाँ से सैर करके लौटी है। वहाँ देखी हुई बातों की चर्चा छेड़कर उसने सोनियाँ को अवाक् बना दिया।

पत्थर के घाट, मकान और मंदिरों की चर्चा ख़तम नहीं हुई। उसी

समय दीपा वहाँ के दशाश्वमेध पर तरह-तरह की सुनी बोलियों की नक़ल करके सुनाने लगी। साथ ही वैसे गानों की लय भी बतलाई जिनकी सोनियाँ ने कभी कल्पना नहीं की थी। बाबा विश्वनाथ की महिमा बतलाते हुए उसने कहा—उनका मंदिर हमेशा सोने का बना रहता है, काशी के दूसरे मंदिर तो सिर्फ़ सवेरे-शाम सोने के बनते हैं। सुना है शिवजी के गण ही स्वयं आकर रोज़ उनके नए-नए रूप बना जाते हैं।'

सोनियाँ को गंगा-पार की रेती याद आई। वह भी तो सुनहली रहती है। अब उस रंग का कारण भी उसकी समझ में आया—'शिवजी के गण उसे भी सोने का बना जाते हैं!'

दीपा का बच्चा एक ओर आँगन में खेलने लगा। अपनी माँ और मौसी की बातों से उसे कोई मतलब नहीं। उसे अभी भूख भी नहीं लगी। वह आकाश में उड़ते पक्षियों को अपने साथ खेलने के लिए बुलाता है। वे नहीं आते। वह ख़ुद उठना चाहता है। ख़ूब ज़ोर लगाता है फिर भी नहीं उठ पाता। तब चिल्लाना चाहता है।

इसी समय दयाल की माँ ने उसे ऊपर उठा लिया। बच्चे को मालूम पड़ा, मानो वह फिर से योगिनी माँ की गोद में आ गया है।

अगले दिन सवेरा हो जाने पर देर में सचिता की नींद खुली। दयाल तड़के ही उठकर बाँध पर चला गया है। रविशंकर भी गंगा किनारे टहलने निकल गए हैं। घर का दरवाज़ा आधा खुला है। उसके बीच से भीतर का आँगन दिखाई देता है। इस समय भीतर सोनियाँ झाड़ू लगा रही है।

उसका सफ़ेद चौखूँटा चिपटा ताबीज़ बहुत नीचे तक झूल रहा है। उसके ही साथ घुंडी लगी अठन्नी-चवन्नियों की माला उलझ गई है। गले से बिलकुल चिपकी, उसकी हँसली है, बाँह पर गोदने में बिजावट

बना है। ललाट के ठीक बीच में लाल रंग की बड़ी टिकली है। वह उसकी साड़ी पर छपे बूटों के ही बराबर है। जो झुलिया वह पहने है, उसमें भी कई छेद हैं जिनके भीतर से उसके शरीर का असली रंग चमक जाता है। उसके चेहरे पर दृष्टि पड़ते ही पता लग जाता है कि उसके रूप-लावण्य की तुलना में उसके कपड़े और अलंकार कहीं मोटे हैं।

वह आँगन बुहारती हुई बरोठे की ही ओर आ रही है। झाड़ू के 'झर्-झर्' के साथ साथ उसके पाँव के कड़ों से 'झुन्-झुन्' की आवाज़ निकलती है। उसकी सारी भंगिमा ठीक नृत्य समय की सी सुन्दर दिखाई देती है। सचिता की खुली आँखों पर दृष्टि पड़ते ही उसने दरवाज़े के दोनों कपाट मिला दिए।

कुछ देर बाद दरवाज़ा खुला तो उधर से दयाल की माँ निकलीं। सचिता ने उन्हें नमस्कार किया। उन्होंने उसके सिर पर हाथ फेर आशीष दी। फिर घड़ा बग़ल में रखकर वे कहने लगीं—'दयाल ने आज सबेरे तुम्हारा सब हाल कहा। बच्चा! गंगामैया ने ही तुम्हें उबार दिया। तुम्हारी माँ ने ज़रूर कोई बड़ा पुन्न किया होगा?'

वे सचिता के घर की और सब बातें पूछने लगीं। जब उन्हें पता चला कि उसकी बहुत छोटी उम्र में ही उसकी माँ जाती रहीं तो वे देर तक 'च...च...' और 'आ...हा...' करती रहीं। वे कल्पना द्वारा अपने अभाव में दयाल की ज़िन्दगी देखने लगीं। उनकी आँखें छल्-छल् करके भर आईं। आँचल से उन्हें पोंछते हुए कहने लगीं—'बिना माँ के लड़कों को देखकर मुझे बड़ी ममता होती है।'

सचिता को दयाल का जीवन अपने से कहीं सुखी दिखाई देने लगा—'उसकी माँ हैं और वैसी बहू भी! पर मुझे?'

उसे कोई भी सामने दिखाई नहीं दिया।

बहुत कोशिश करने पर भी दीपा अपना बुख़ार रोक न सकी। यह

उसे बहुत बे मौक़े आया दीखता है। ठीक उसी समय जब वह उत्सव मनाना चाहती है, जब उसे अपना जीवन किंचित् हलका होकर नृत्य की सी गति पर चलता दिखाई देता है।

उस दिन नाव पर उसे ठंढ लग गई। तभी से उसे अंगअंग टूटता-सा मालूम पड़ता है। वह समझती थी कि यह पीड़ा यों ही दूर हो जाएगी इसलिए किसी से कुछ कहा न था। पर तीसरे दिन सबेरे चारपाई पर से वह उठ भी नहीं सकी। सोनियाँ ने उसके बदन पर हाथ रखा तो उसे जलता हुआ सा मालूम पड़ा। अँगारे जैसा। वह घबरा गई। उसने तुरंत ही दयाल को बुलवाया।

दीपा की बेचैनी देखकर दयाल भी थोड़ी देर के लिए खेती, बाँध, सुराज आदि की चिन्ताएँ भूल गया। सोनियाँ से कम ममता उसे दीपा के लिए नहीं है। बार बार उसके मन में आने लगा—'हमारे घर आकर ही इसकी यह हालत हुई! इसकी योग्य सेवा हमसे नहीं बन पड़ी, इसीलिए तो?'

वह अपने को ही अपराधी मान सिर नीचा करके बैठ गया। सोनियाँ ने ही उससे कहा—'एक उपाय है। मठिया के बाबा की दवा से यह ज़रूर अच्छी हो जाएँगी!'

वह सच्चिता के पास गई। दीपा के रोग का विवरण देकर एक पुर्जा बाबा के नाम लिखने के लिए उसने कहा। सच्चिता हिचकता था। पर सोनियाँ का आग्रह वह टाल नहीं सका। पुर्जा उसने लिख दिया। उसे लेकर दयाल के हाथ में देते हुए उसने कहा—'यह पाते ही बाबा तुम्हें दवा देंगे। अब देर न करो।'

दयाल अपने पाँवों में अद्भुत तेज़ी आती अनुभव करने लगा। वक़्त का हिसाब लगाकर उसने कहा—'उस पार से दौड़ कर गया और आया तो, आज रात तक ज़रूर लौट आऊँगा। अभी बाज़ार जानेवाली नाव तो नहीं खुली होगी?' आख़िरी शब्द कहते न कहते वह दौड़ पड़ा।

सचिता उसे कई बातों से सावधान कर देना चाहता था परंतु कुछ भी सुनने की दयाल को फ़ुर्सत नहीं।

'दयाल! दयाल!' पुकारती हुई उसकी माँ भी निकलीं। उनके हाथ में हँसली है। कुछ देर पहले वह सोनियाँ के गले में थी। उन्होंने सचिता से पूछा—'दयाल?'

'वह तो चला गया।'

'दवा लाने?'

'हाँ।'

'कैसे लाएगा?' बूढ़ी ने झुँझलाते हुए कहा—'उसकी देह पर तो कुर्ते के सिवा कुछ है भी नहीं। कंधे पर गमछा डालकर भी नहीं गया। अगर दवा ख़रीदनी पड़ जाए? मुफ़्त में कौन देगा? मठिया जाने के लिए सवारीवाले भी तो पैसे लेंगे?'

इतने में पड़ोस का एक लड़का सामने आ निकला। उसके हाथ में हँसली देकर उन्होंने कहा—'बेटा! दौड़ कर यह दयाल को दे आ। इसे बेचकर वह दवा लाएगा!'

वह लड़का भी दौड़ता चला गया। उसके ओझल होते ही सचिता के मन में बहुत सी शंकाएँ उठने लगीं—'यदि वह पुर्ज़ा बाबा के सिवा और किसी के हाथ पड़ा?'

सोनियाँ की घबराहट और दीपा की बेचैनी की ओर ध्यान रहने के कारण अब तक इस बात पर विचार करने का मौक़ा उसे नहीं मिला था। अब वह स्वयं घबराने लगा—'दयाल पढ़ा लिखा नहीं है। अगर उसने किसी से पुर्ज़ा पढ़वाया? तब तो...'

आगे के दृश्य भयावने हैं!

वह अपने आपको झिड़कने लगा—'मैं भी कैसा बेवक़ूफ़ हूँ। अपना नाम ही उस पुर्ज़े पर क्यों लिखा? फिर दयाल को ख़तरे की बातें भी नहीं बतलाईं!'

उसने दयाल को सचेत कर आना ही निश्चय किया। वह ख़ुद किनारे की ओर दौड़ा परंतु थोड़ी दूर पर ही उसे हँसली देकर लौटता हुआ लड़का मिला। उसने कहा—'नाव खुल चुकी है।'

किनारे पहुँचकर सचिता ने देखा, सचमुच ही नाव गंगा में बहुत दूर निकल गई है।

बाढ़

गंगाजी का पानी बढ़ता ही जा रहा है। कछार डूब जाने के कारण उनका पाट बहुत चौड़ा हो गया है। उस पार के बड़े-बड़े वृक्ष गंगा में ही उगे जैसे दिखाई देने लगे हैं। इधर का किनारा भी अब लबालब भर कर उमड़ना चाहता है।

पानी की बाढ़ नापने के लिए किसानों ने जितने निशान लगाए थे, सब एक-एक कर डूब गए। पश्चिम की ओर देखने से पता चलता है कि उधर ज़ोरों की वृष्टि हो रही है। पानी के और बढ़ने की ही संभावना है।

'और मिहनत बेकार है!' किसानों के मन में उठता है। परंतु फावड़े डाल देने के लिए वे अब भी तैयार नहीं हैं। ढहते हुए किनारे की ओर देखकर बिसू ने कहा—'गंगा मैया अगर इतने पर भी मान जाएँ?'

'अब बचने की उम्मीद नहीं!' हरियाले खेतों की ओर देखकर फागू ने जवाब दिया।

'भैया! जब तक साँस तब तक आस!'

'ऐसी अच्छी फ़सल तो मेरे होश में पहले कभी नहीं हुई।' कहकर हरखू ने लंबी साँस ली।

'और कैसी तैयार हो चली है ! कटने में अब सिर्फ़ हफ़्ते-दस दिन की देर है।'

'अरे देखो ! गंगा मैया अभी काटे लिए जा रही हैं।'

जहाँ उन्होंने अभी-अभी मिट्टी डाली थी वह धुलकर बह चली। 'हाँ...हाँ...' करते किसान उसी ओर बढ़े। वे जल्दी-जल्दी वहाँ फिर मिट्टी डालने लगे। उस जगह का पानी बड़ी मुश्किल से रुका। पर इसी समय एक साथ ही और कई जगह से पानी रेंगता हुआ दिखाई दिया। किसान और भी फ़ुर्ती से फावड़े चलाने लगे।

पसीना पोंछने के लिए कभी-कभी वे नज़र ऊपर उठाते हैं। उनकी लालायित दृष्टि खेतों की हरियाली पर फिरने लगती है। पर उसी दृष्टि में दिखाई दे जाती हैं—उन्हें उमड़ती आती हुई गंगा। वे अपना हृदय थामकर कहते हैं—

'इस बार प्रलय होगी !'

'बुख़ार कुछ कम हुआ ?' वहाँ से लौटकर सचिता ने बूढ़ी माँ से पूछा।

'बहुत कुछ !' उन्होंने दरवाज़ा खोलते हुआ कहा—'अब वह सो रही हैं। दयाल को फ़िज़ूल ही हैरान किया। मेरा ही दिमाग़ चकरा गया है। आज़माई हुई दवा सबेरे याद नहीं आई। तेल-पानी की मालिश से ही वे अच्छी हो गईं। घबराने की कोई बात नहीं है। बुख़ार उतर चला है।'

खाना परोसते समय उन्होंने कहा—'अब इस तूफ़ान में वह नहीं आएगा। चढ़ी गंगा में उसका नाव न खोलना ही अच्छा होगा।'

'उस पार रहेगा कहाँ ?'

'ठहरने की उसे क्या फ़िक्र ? घर से निकलने भर की देर रहती है। मन तो उसका हमेशा सुराज-आश्रम में ही लगा रहता है।'

बाहर साँवले रंग के बादल, घने होते जा रहे हैं। उनसे रात कुछ-

कुछ काली बन गई है। बाहर थोड़ी भी हलचल होने से सचिता और कभी-कभी रविशंकर भी चौकन्ने होकर देखने लगते हैं परंतु प्रत्येक बार हवा के झोंकों की अथवा छप्पर के खपड़ों के खड़खड़ाने की आवाज़ होती है। सोने के समय, सचिता के मन में एकाएक विचार उठा—'दयाल नहीं आया! वह पकड़ तो नहीं गया?'

रात्रि के अंधकार के कारण ही सम्भवतः उसे निरुत्साह और नैराश्य घेरने लगा है। उनकी ही चपेट में पड़कर वह सोचने लगा—'आज किसका मुँह देखकर उठा हूँ?'

सोनियाँ का चेहरा उसकी आँखों के सामने नाच गया। अजीब रूप में। वह उसे आँगन में नहीं, बल्कि बाहर वर्षा में भीगती दिखाई पड़ी। जहाँ वह खड़ी है, वहाँ पानी बढ़ता जा रहा है। वह कातर दृष्टि से उसी की ओर देख रही है। बात की बात में, पानी उसके गले तक पहुँचने लगा। सचिता के मुँह से निकला—'अरे...रे...!'

'क्या है?' रविशंकर ने पूछा।

'कुछ भी नहीं!'

उनकी आवाज़ वर्षा की आवाज़ में दब गई। चादर से उन्होंने अपना मुँह ढाँक लिया।

आधी रात होते-होते सारे गाँव में तहलका मच गया। भीषण कोलाहल सुनाई देने लगा। मालूम पड़ता है, जैसे किसी दुश्मन की फ़ौज ने गाँव पर हठात् हमला कर दिया हो। विशेषतया औरतों और बच्चों का शोर ही अधिक सुनाई देता है। लोगों की घबराहट बढ़ी हुई है। चारों ओर हल्ला मच रहा है—'पानी! पानी!'

बाढ़ का पानी जहाँ तक पहिले कभी नहीं पहुँचा था इस बार वहीं पहुँचने लगा है। उससे मिट्टी की दीवारें पहले गीली हुईं और फिर घुल घुलकर खोखली पड़ने लगीं। जो पुरानी पड़ गई थीं, वे धमा-

धम गिरने लगीं। घरों के भीतर रहना ख़तरनाक हो गया। दीवारों से कुचलने के डर से भाग-भाग कर लोग बाहर निकल आए। परंतु, उनके पाँवों के नीचे भी घुटनों भर तक पानी आ गया। उसमें भी प्रवाह है।

सोनियाँ ने बच्चे को गोद में उठा लिया है। वह सूखी ज़मीन के लिए दृष्टि दौड़ा रही है। अंधकार में उसे कुछ भी दिखाई नहीं देता। ठंढ अथवा भय के कारण दयाल की माँ अंधकार में ही काँप रही हैं। दीपा औसारे में पड़ी हुई छोटी चौकी पर आ बैठी है। उधर भी, पानी चढ़ना चाहता है।

'अब और कोई चारा नहीं!' बूढ़ी माँ ने कहा—हमें यह घर छोड़ना ही पड़ेगा। दयाल का जिस साल जन्म हुआ था, उस साल भी ऐसी ही बाढ़ आई थी। उसे गोद में लेकर मैं रात भर पानी में भीगती रही। ज़मींदार के डीह पर हम लोगों ने उस बार शरण ली थी। हमारा मकान उस बार भी बच गया था। परंतु इस बार?

अंधकार ने उन्हें कुछ भी उत्तर नहीं दिया। अपना 'क़ीमती' सामान सम्हालने में उन्हें अधिक समय नहीं लगा। थोड़े से कपड़ों की उन्होंने गठरी बनाई। उसी में चाँदी के दो एक गहने, काँसे के कई बरतन और थोड़ा सा अनाज भी रख लिया। वे तैयार हो गईं। परंतु उस समय भी घना अँधेरा था। वे उजाले की प्रतीक्षा करने लगीं।

उसी भाँति बैठे-बैठे उन्होंने रात काटी।

उजेला होने पर उन्हें अपने चारो तरफ़ अजीब-सा दृश्य दिखाई देने लगा। छप्पर और दीवार के रहते, बाहर की भाँति घर के भीतर भी पानी भर गया है। दूर के मकान नदी में बजड़े की भाँति तैरते दिखाई देते हैं। सूर्य भी आज मानों एक नई जगह से निकल रहा है। रोज़ वह बालू, भाऊ या हरे-भरे खेतों के बीच से निकला करता था। परंतु आज उसने पानी में से ही सिर ऊपर उठाया है।

पिछली रात, गंगा किनारेवाला बाँध भी टूट चुका है। मेढ़ों

और पगडंडियों का कहीं भी पता नहीं। खेतों में चारों ओर जलप्लावन का दृश्य है। गंगाजी की धारा अब खेतों से होकर बहने लगी है। पौधे डूब चुके हैं। अब कठिनता से वे कहीं-कहीं छटपटाते और आख़िरी साँसें लेते दिखाई देते हैं।

दूर पर चक्राकार घूमते हुए बहुत से वृक्ष और प्राणी, पानी में बहते जा रहे हैं। गंगाजी मानों उन्हें अपने हाथों पर लिये उछालती हुई चली जा रही हैं। बहुत दूर से वे काले बिंदु जैसे दिखाई देते हैं। नज़दीक आ जाने पर ही वे पहिचान में आने लगते हैं। उनमें कितने ही मवेशी हैं। वे आसानी से हार माननेवाले नहीं। प्राणों की ममता ने उन्हें इस समय बहुत धीर और हठी बना दिया है। कई आदमी भी बहते चले जा रहे हैं। आस पास कोई उन्हें सहायता देनेवाला नज़र नहीं आता, फिर भी वे चिल्लाते जा रहे हैं—'भाई बचाओ! भाई बचाओ!'

बाँध की रक्षा करनेवाले किसान अँधेरा रहते ही घर लौट आए हैं। इस समय वे अपने घरवालों को बचाने में लगे हैं। दीवार गिर जाने पर कई मकानों के छप्पर बहने लगे हैं। उन छप्परों पर औरतों और बच्चों को बिठा दिया गया है। किसान युवक उन्हें खींचकर सूखे डीह की ओर लिये जा रहे हैं।

वैसा ही एक बेड़ा, दयाल के घर के सामने आ निकला। बेड़ा खींचनेवाले युवक दयाल के साथी हैं। उन्होंने दयाल के परिवार तथा वहाँ आश्रय लेनेवालों की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया। उन्होंने उस घर की औरतों को भी बेड़े पर बिठा लिया। उस पर पहले से बैठा हुआ एक लड़का सोनियाँ की गोद के बच्चे को लेने के लिए आगे बढ़ा। सोनियाँ ने नहीं दिया। तब उस लड़के को अपने मेमने की याद आई। वह रो-रोकर पूछने लगा—'और मेरा मेमना?'

'वह अगली खेप में!' उसकी माँ ने उत्तर दिया।

'नहीं...' बच्चा हाथ-पाँव पटकने लगा। उसे जाता देखकर उसके

दरवाज़े के आगे पड़ी हुई खाट पर बैठे मेमने ने 'मैं-एँ-एँ-एँ...' करके उसे विदाई दी।

बेड़ा ढकेलकर वे लोग आगे बढ़ा ले चले।

डीह बहुत पुराना है। किसी ज़माने में, दियारे के कई गाँवों के एक बड़े ज़मींदार वहाँ रहा करते थे। परंतु अब वह सारा ख़ान्दान शहर में जा बसा है। सिर्फ़ फ़सल तैयार होने पर साल में दो बार उनके मुंशी लगान वसूली के सिलसिले में यहाँ आया करते हैं, परंतु वे गाँव में ही किसी के यहाँ ठहर जाया करते हैं। डीह पर खड़ी हुई ईंटों की सिर्फ़ दो दीवारें, ज़मींदार की हवेली का स्मरण दिलाने को बच रही हैं। वे दीवारें अब भी गंगा पार से दिखाई दे जाती हैं। माझी उन्हें ही लक्ष्य बनाकर अपनी नैया इस पार लाया करते हैं।

वहाँ की ज़मीन करारी और काफ़ी ऊँची है। गाँवों में बाढ़ आने पर भी डीह का टीला सिर ऊँचा किए खड़ा रहता है। दूर से वह ठीक एक छोटे-मोटे द्वीप जैसा दिखाई देता है।

उसी टीले पर गाँववालों ने शरण ली।

अपने बचाव के लिए उन्होंने जगह-जगह सिरकी के पाल तान लिए। दूर से वे चिड़ियों के घोंसलों जैसे दीखते हैं। वैसे ही घोंसले में उस गाँव के कितने ही किसान परिवारों का सर्वस्व संचित है। वहाँ उनकी ज़िन्दगी की बची-खुची कमाई है।

हाँडी और मिट्टी के पात्रों से ही उन 'घोंसलों' का बहुतेरा भीतरी हिस्सा घिर गया है। कई हाँडियों में थोड़ा बहुत अनाज है, पर बाक़ी यों ही मुँह बाए रहती हैं। कई चूल्हे पर चढ़ाई जानेवाली हैं लेकिन व्यवस्था के अभाव में अभी ठंढी पड़ी हैं। उन हाँड़ियों पर चिथड़े पड़े रहते हैं।

'घोंसले' के बीच में गुदड़ी बिछी रहती है। वैसी ही एक गुदड़ी

पर दीपा बैठी है। इस समय की मुसीबत ने ही उसे अपने बुखार की याद भुला दी है। अपनी दुर्बलता पर उसे चिढ़ हो रही है। वह स्वयं अपना पथ्य भी तैयार नहीं कर सकती। उसकी व्यवस्था करने सोनियाँ एक पड़ोसी के यहाँ गई है। बच्चे को भी वह साथ लेती गई है।

उनके चारों ओर, चलने फिरने योग्य बच्चों से लेकर जीर्ण-शी बूढ़ों तक, सभी लोग सिरकी के पालों के सामने बैठे रहते हैं। उनमें गृहस्थ और गृहिणी तुरंत ही पहचान में आ जाते हैं। गृहस्थ का चेहरा गंभीर और गहरी झुर्रियोंवाला है। उसकी आँखों में निराशा भरी है। वह कभी पानी में झिलमिल करते पौधों, कभी टूटी नाव के तख्तों की तरह दीखनेवाले अपने घर और कभी अट्टहास करनेवाली गंगा की ओर देखता है। बच्चों के ज़रा भी शोर मचाने या कुछ पूछने के लिये आने पर वह उन्हें बुरी तरह झिड़क देता है।

'उन्हें छोड़ो!' गृहिणी बच्चों को अलग खींचकर ले जाती हुई कहती है—'उन्हें घर गृहस्थी की फिकिर लगी है।' उसकी आँखें भी भीतर धँस गई हैं, एक क्षण के लिए भी उन्हें विश्राम नहीं है। बच्चों को पानी के किनारे जाता देखकर वह चिल्ला उठती है। उन्हें डाँट-डपटकर वापस बुलाती है। वे ज़िद पकड़ लेते हैं तो ख़ुद वहाँ जाकर उन्हें खींच लाती है। इतने में ही गोद का बच्चा चिल्ला उठता है। माँ उसे दूध पिलाने लगती है।

पास ही, खूँटों से बँधे उनके मवेशी हैं। उनके लिए भी यह एक अनजान जगह है। यहाँ नाँद नहीं, न है सानी-पानी। भूख से वे 'में···में···!' करते हैं। उनकी आवाज़ सुनकर किसान उठता है। वह मवेशियों को खिलाने की चिन्ता में चारों ओर देखता है। एक वृक्ष पर उसकी दृष्टि जाती है। वह पत्ते तोड़ने के लिए ऊपर चढ़ता है। एक डाली पर उसकी नज़र पड़ती है।

'साँप!' चिल्लाता हुआ, वह नीचे उतर आता है। साँपों के लिए

भी वही आश्रयस्थान बच रहा है। किसान और साँप दोनों ही उस डीह के शरणार्थी हैं। इस मौक़े पर किसान उन साँपों पर अपने डन्डे नहीं चलाते।

किसान पानी में खड़े हुए पीले पौधे उखाड़कर मवेशियों के सामने डाल देते हैं। मवेशी उन्हें सूँघते हैं। पहली बार छोड़ देते हैं। किसान फिर अपनी अपनी जगह जा बैठते हैं। मवेशी अधमरे पौधे चबाने लगते हैं।

आदमियों की भी यही हालत है। चूल्हा जलाने के लिए न तो सूखी लकड़ी है और न ठौर। गृहिणी ने बच्चों को कच्चे चने दिए हैं। वे थोड़ी देर पाँव पटकते रहे, तब उसी अन्न को पक्षियों की तरह चुगने लगे। वही अन्न सामने लाए जाने पर पहले तो बूढ़े बिगड़े, पर तुरंत ही उनकी आँखों में आँसू आ गए। वह अन्न उन्होंने अपने अँगौछे में बाँध लिया।

'और तो कोई दूसरा अन्न है नहीं!' गृहिणी ने कहा।

'तुमसे दूसरा माँगता ही कौन है?' बूढ़े ने कहा—'बीज का अन्न खा जाने पर गृहस्थी कैसे चलेगी?'

उन सबकी दृष्टि गंगा पर ही लगी रहती है। औरतें गंगा मैया को कोसती हैं। बच्चे उनका पानी नापते हैं। नौजवान उनसे घटने के लिए कहते हैं। बूढ़े उनसे अपना भाग्य पूछते हैं। सब के सब, उस पार से अनाज और कपड़े की मदद लेकर आनेवाली नौकाओं का इंतज़ार किया करते हैं।

'इस डाकिनी ने हमारा बसा हुआ घर उजाड़ दिया!' एक गृहिणी ने बाहर बैठे मर्दों को सुनाकर कहा।

'चुप रह करकसा!' उसके स्वामी ने डाँटते हुए कहा—'इसी गंगा जी का दिया खा खा कर ही तू पिंगिल पढ़ा करती है।'

'बाबा!' एक लड़के ने अपने बूढ़े बाबा का हाथ खींचते हुए

कहा—'पानी तो कम होता जाता है ! तुमने तो कहा था, उस घर के ऊपर से हमारी नाव जाएगी ! अब क्या होगा ?'

'चल, चल ! पानी में दूसरी लकड़ी का निशान लगा। मैं अभी आया।' कहकर बाबा ने लड़के को संतोष देकर विदा किया। फिर अपने पुत्र और बहू का झगड़ा मिटाने की ग़रज़ से कहा—'अफ़सोस किसलिए ? गंगाजी को दी हुई चीज़ थी, उन्होंने वापस ले ली। अगर मिट्टी का घर उन्होंने छीन लिया है, तो ईंटों का तैयार करा देंगी।'

जी-जान से बाँध की रक्षा करनेवाले किसानों की टोली अलग बैठी है। उनमें गंगाजी का रंग देखकर, इस बार खेतों में पड़नेवाली मिट्टी के मामले में बाज़ी लग रही है। एक दल, जो बहुत अधिक निराश हो चुका है, सिर्फ़ बालू पड़ने की उम्मीद कर रहा है। दूसरे दल को उपजाऊ काली मिट्टी पड़ने की आशा है। इस दल के लोग कहते हैं—'इस बार जैसी मिट्टी पड़ेगी उसमें छाती भर से कम ऊँची रब्बी नहीं होगी। गंगाजी ने जितना छीन लिया है, उतना सूद समेत एक ही फ़सल में दे देंगी।'

'हमें तो अबकी कलकत्ते का ही रास्ता लेना होगा !' उनके विपक्षी कहते हैं—'इस बार गंगाजी इस दियारे के लोगों से भीख मँगाकर ही छोड़ेंगी।'

'भीख ? भीख तो हमारे बाप-दादा ने देना सिखलाया है, माँगना नहीं। किसान होकर हम भीख नहीं माँग सकते।'

'अच्छा मान लिया कि मिट्टी अच्छी पड़ी, लेकिन बीज ?'

इस प्रश्न ने एक मुहूर्त्त के लिए वहाँ बैठे हुए सब किसानों को चौंका दिया। परंतु उनमें से एक बूढ़े ने कहा—'अगर गंगाजी बढ़िया मिट्टी देंगी तो वह ऊसर नहीं रह सकती। उसके लायक बीज भी वे कहीं न कहीं से जुटा ही देंगी !'

उसकी दृष्टि गंगा पार तक पहुँचने लगी। पहले वहाँ कितनी ही वें दिखाई देती थीं, पर इस समय एक का भी पता नहीं।

'इन नावों को क्या हुआ ?' एक ने कहा—'उस दिन से हमारे गाँव की भी नावें नहीं लौटीं ?'

'वे बहती-बहती समुद्र तक पहुँच गई होंगी।'

'उस पारवालों को जान पड़ता है, हमारे जीने मरने से कोई ताल्लुक़ ही नहीं रहा !'

'न, ऐसा कैसे होगा ?'

'अभी उस बार की ही बड़की बाढ़ में देखो—' एक नौजवान कहने लगा—'इतनी बरबादी नहीं हुई थी, फिर भी उस पार से नाव लेकर लोग अनाज और कपड़े बाँटने आ गए थे। इस बार तो अजीब हालत है। हमारे पास बीज के लिए भी अनाज नहीं बचा और न शरीर पर कोपीन के सिवा दूसरा कोई कपड़ा है, तब भी कोई सूरत दिखाने नहीं आ रहा है।'

'अजी, तुम्हें गंगा ही बहा ही ले जाएँ तो उस पारवालों का क्या बनता-बिगड़ता है ?'

'क्यों हमीं तो उन्हें अन्न और दूध पहुँचाते हैं'—एक आशावादी बूढ़े ने कहा—'वे हमें यों ही बाढ़ में बह जाने न देंगे। किसी न किसी इंतज़ाम में वे ज़रूर लगे होंगे !'

आँखें गड़ा-गड़ाकर वे उस पार देखते रहे। नाव का एक मस्तूल उन्हें दिखाई भी दिया। पर वह उनकी ओर नहीं आया। उसी पार के क्षितिज में वह लोप हो गया।

तीसरे दिन जाकर गाँव से पानी हटा।

अब बाँध पूरी तरह दिखाई देने लगा है, परंतु मेड़ों और पगडंडियों का अब भी कहीं पता नहीं है। भूमि बिलकुल काली दीखती है। सब तरफ़ कीचड़ ही कीचड़ है। पौधे उसी में सने हुए संग्रामक्षेत्र में सिपाहियों की लाशों की तरह पड़े हैं।

मकानों को देखने से मालूम पड़ता है जैसे उन पर बम मारी हुई

हो ! किसी न किसी दीवाल के विकृत होने से, शायद ही कोई बच रहा है। किसी के छप्पर धँसकर नीचे आ गए हैं, किसी की पूरी आकृति ही टेढ़ी मेढ़ी हो गई है और कितनों की सिर्फ़ ठूँठी दीवारें ही बाक़ी बची हैं।

आकाश साफ़ हो गया है। सूर्यदेव अपनी पूरी कला के साथ चमक रहे हैं। उनका प्रकाश जीवों में फिर से उत्साह का संचार करने लगा है। पक्षी उड़ते दिखाई दे रहे हैं। मवेशी अँगड़ाइयाँ लेकर चारे की खोज में निकल पड़े हैं। बाँध पर की घास फिर से बाहर निकल आई है। वे उसी ओर बढ़े जा रहे हैं।

सिर्फ़ आदमी ही अपनी रोनी सूरत अब तक दूर नहीं कर पाए हैं। वे बाढ़ से नष्ट हुई अपनी सम्पत्ति का हिसाब-किताब करने की उधेड़बुन में लगे हैं। कीचड़ हटा-हटाकर अब भी काम में आनेवाली चीज़ें वे बाहर निकाल रहे हैं। कुछ लोग गिरते हुए मकानों को बचाने की कोशिश में लगे हैं। औरतें, माथा ठोक-ठोककर अनाज और कपड़े धूप में डाल रही हैं।

'नाव ! नाव !' लड़कों ने आकर ख़बर दी—'उस पार से तीन नावें इधर आ रही हैं।'

नावों का इस ओर आना भी आज गाँव के लोगों के लिए नई बात है। वे अपना-अपना काम बंद कर उधर ही देखने लगे। छोटे बच्चों की दृष्टि बाँध के कारण रुक जाती है। उन्होंने बड़ों के कंधों पर चढ़ने की ज़िद बाँध ली। जब उन्हें भी नावें दिखाई पड़ीं, तो वे हाथ उठाकर उन्हें अपनी ओर बुलाने लगे।

रविशंकर और सचिता भीगे हुए गेहूँ धूप में डालने में, बूढ़ी माँ की मदद कर रहे थे। बाढ़ के झोंकों से उनकी और सब चिन्ताएँ दब गई हैं। उन्हीं झोंकों में दीपा की बीमारी भी अच्छी हो गई। गाँववालों

की उस विपत्ति के सामने उसे अपनी दुर्बलता का भी ख़याल नहीं रहा। अब वह सोनियाँ के साथ अपने पड़ोसियों की मदद करने गई है।

नावों के आने की ख़बर सुनकर वे चौंक पड़े। उनकी अगवानी के लिए रविशंकर और सचिता किनारे की ओर चले। नावें उन्हें दिखाई पड़ीं। वे नज़दीक आने लगीं। पर उनमें दयाल को वे पहचान नहीं सके। उनकी नज़र लाल रंग पर पड़ी। उनके गले सूखने लगे। भली भाँति देखने के लिए वे एक वृक्ष पर चढ़ गए।

'लाल पगड़ी ?' रविशंकर के मुँह से अस्फुट आवाज़ में निकला।

'पुलिस—' सचिता ने उन्हें निश्चय करके बतलाया—'तीनों नावों पर उनकी ही जमात है।'

अगली नाव के पास आ जाने पर उन्होंने पहचान लिया। दयाल के हाथों में हथकड़ी लगाए दो सिपाही उसके दोनों ओर बैठे हैं। उन्हें घेरकर कई आदमी बंदूकें लिए खड़े हैं। नाव की छत पर एक अफ़सर के साथ दारोग़ाजी बैठे हैं।

बहुत-सी आशंकाएँ एक साथ ही आकर उन्हें कँपाने लगीं। उनके पाँवों के नीचे की डाली खिसक चली। अपने हाथों से एक डाली उन्होंने ज़ोर से पकड़ ली।

आतंक

आकाश की आकृति कई दिनों से उदासी लिये रहती है। रह रह कर दिन में कई बार फुहारें पड़ जाती हैं। हवा एक आतंक लिए चला करती है।

इस पार के गाँवों में चहल-पहल नहीं के बराबर है। सिर्फ़ बड़े रास्तों पर पुलिस, चौकीदार, आदि बेमौक़े मँडराते दिखाई देते हैं।

लोग अपने घर से निकलना पसंद नहीं करते। ख़ासकर पुलिस-वालों की नज़र बचाए रखने के ख़याल से। जहाँ वे आते दिखाई दिए, गाँववाले ओट में हो जाते हैं। फिर भी, जिसके दरवाज़े पर वर्दीधारी आ धमकते हैं, वह उनको साक्षात् यमदूत समझकर बेहद भयभीत हो जाता है।

यह पहला ही मौक़ा है जब इधर के गाँवों पर इस समारोह के साथ पुलिसवालों का धावा हुआ है। गाँववाले सिपाहियों की वर्दी और उनके डन्डों से पहिले से ही भय खाते थे, अब उन्हें बंदूक़-संगीनवाले भी दिखाई देने लगे हैं। उनके इधर दिखाई देने का यह पहला ही मौक़ा है।

उस दिन भोला माझी को दारोग़ाजी ने घाट पर ही गिरफ़्तार किया। वे उसे थाने ले आए। उसने रविशंकर आदि का काशी से अपनी नाव पर लाना स्वीकार किया। उनके संबंध में उसे और भी जो कुछ पता था, उसने बतलाया। उससे और काम निकालने के लिए दारोग़ाजी ने उसे हवालात में बंद करवा दिया।

संदिग्ध राजनैतिक व्यक्तियों की नामावली में भी वे नाम थे। उसी में उनके 'कारनामों' का भी कुछ वर्णन था। दारोग़ाजी जानते थे कि ये मामले सरकार की दृष्टि में बहुत अधिक महत्व रखनेवाले हैं। सार्वजनिक हित-रक्षा के मामलों में वे लापरवाही दिखाने के आदी थे, जिसे उनके अफ़सर माफ़ भी कर देते थे। पर यह मामला, दूसरा था। 'बमवालों' के नाम ने ही उन्हें सहसा बहुत फ़ुर्तीला और अपनी ज़िम्मेदारी महसूस करनेवाला बना दिया। 'हूँ...उ...म्' करके वे उठ खड़े हुए।

बमवालों को घेरने के लिए उन्होंने तार द्वारा ज़िले से सशस्त्र सिपाहियों की मदद मँगा ली। इस मामले को गंभीर समझकर सुपरिंटेंडेंट साहब ख़ुद ही सशस्त्र और ख़ुफ़िया फ़ौज के साथ आ धमके। सोनारपुर बाज़ार से गंगा किनारे-किनारे बहुत दूर तक उन्होंने अपना जाल बिछा दिया। उस जाल में 'मछलियाँ' फँसाई जाने लगीं। जिन्हें स्थानीय पुलिस अधिकारी निरपराध क़रार देते आए थे, उनकी भी धर पकड़ शुरू हो गई। ख़ुफ़ियावालों को इस इलाक़े में बड़े ख़ौफ़नाक बमवालों को गिरफ़्तार करने की उम्मीद होने लगी।

जिस गाँव में बाबा की मठिया पड़ती है, उसके मुखिया, वहाँ के एक ज़मींदार हैं। उन्हें भी थाने में हाज़िर किया गया। पुलिस के हाकिम ने उनसे पूछा—

'मठिया की ज़मीन तुम्हारी है?'

'अब नहीं, सरकार।'

'तब ?'

'बाबा की। उन्होंने ख़रीद ली है।'

'वे कितने दिनों से यहाँ रहते हैं ?'

'सरकार, वे बचपन में ही घर से भाग गए थे, बुढ़ापे में संन्यासी हो जाने पर लौटे, तब से......'

'मैं पूछता हूँ। कितने साल से वह मठिया है ?'

'बारह चौदह साल से।'

'वहाँ कौन कौन आता जाता है ?'

'सरकार, हमेशा अतिथि, साधु-संन्यासी आते रहते हैं।'

'और सरकार के ख़िलाफ़ ख़ुराफ़ात रचनेवाले ?'

'उन्हें मैंने नहीं देखा।'

'बिना घरद्वार के किसी नौजवान को ?'

'हाँ सरकार, एक वहाँ ठहरा था।'

'तुमने उसे पकड़वाया क्यों नहीं ?'

'सरकार, मुझे मालूम नहीं था कि वह बमपार्टी का है।'

'तुम्हें शक क्यों नहीं हुआ ? अनजान आदमी यों ही क्यों मठिया में आकर टिका ?'

'सरकार, उसने हम लोगों से कहा था कि वह काशीजी का रहने वाला ब्रह्मचारी है।'

'यहाँ किसलिए आया ?'

'बाबा से बैदक पढ़ने।'

'हूँ...उ...म्' कहकर हाकिम ने थानेदार को कुछ इशारा किया। वह सलाम कर वहाँ से चला गया। फिर उसने ज़मींदार से पूछा—

'रविशंकर तुम्हारे गाँव का है ?'

'जात से निकाला हुआ सरकार !'

'उससे मिलने जुलनेवाले कौन से लोग हैं ?'

'सरकार माफ़ी !'

'ख़ासकर कौन ?'

'भोला, घन्नु, जग्गू और हरखू !'

पुलिस हाकिम ने दारोग़ा को बुलाकर कहा—'यह जिनका जिनका नाम बताये, गिरफ़्तार करके ले आना होगा।' उसने ज़मींदार को भी उनके साथ ही जाने का इशारा किया।

बीस से भी ज़्यादा आदमी पकड़ लाए गए। उनकी तलाशी ली गई। उनसे जिरह भी की गई। पर बमवालों का सुराग़ नहीं मिला। सुपरिंटेंडेंट ने कहा—'बड़ी मछली नहीं पकड़ी जा सकी। शिकार हाथ से निकल गया दीखता है।'

दोपहर को उन्होंने दारोग़ा को कुछ ख़ास हिदायतें दीं। सादी पोशाक में दो ख़ुफ़िया अफ़सरों को वहाँ रहकर वाक़यात की रिपोर्ट तैयार करने के लिए नियुक्त किया। फिर अपने बाक़ी दल को साथ लेकर वे वापस लौट गए।

ख़ुफ़िया के वे अफ़सर भी मठिया से ताल्लुक़ रखनेवाली रिपोर्ट तैयार करके वापस लौटने लगे। मठिया के घेरे के बाहर भी वे निकल आए। इसी समय उन्हें दयाल मठिया के भीतर घुसता दिखाई दिया। साधारण किसान समझकर उसे ख़ुफ़िया के लोग टोकनेवाले नहीं थे पर दयाल ने ही उनसे पूछा—

'बाबा हैं ?'

'क्या काम है ?' एक ख़ुफ़िया ने पूछा।

'दवा लेना है।' कहकर दयाल अपने फेंटे से पुर्ज़ा निकालने लगा। ख़ुफ़िया ने पुर्ज़ा अपने हाथ में लेकर पढ़ा। जिसकी वे फ़िराक़ में थे, उसी एक फ़रार का नाम पुर्ज़े पर देखकर वे उछल पड़े। फिर भी उन्होंने पूछा—'यह पुर्ज़ा तुम्हें किसने दिया ?'

'एक सुराजी ने।'

'वह कहाँ है?'

'पहले मैं दवा ले लूँ!' दयाल उनसे अपना पुर्ज़ा वापस माँगने लगा। खुफ़िया ने अपने दो सिपाहियों को इशारा किया। उन्होंने दयाल का हाथ ऐंठकर पकड़ा। फिर उसे वे मवेशी की तरह हाँककर थाने ल आए।

उसकी पहचान कराई गई। कई सिपाही, बनिए और बाज़ार के लोगों ने कहा—'यह सुराजी दयाल है।'

नंगाझोली लिए जाते समय उसकी धोती के फेंटे से चाँदी की हँसली निकली। दारोग़ाजी ने मुसकराते हुए कहा—'यह चोरी का माल है।'

सेठ के गहने लूटने के अपराध में जो लोग हाजत में बंद रखे गए थे उन्होंने उसकी पहचान की। उसे उन्होंने ठीक ही सेठ की दुलहन की बतलायी। उसी आधार पर खुफ़िया और दारोग़ाजी ने दयाल का डकैत बमवालों के दल का आदमी होना प्रमाणित कर दिया। वे उसके और साथियों, छिपाए हुए बमों और लूट के माल का ठिकाना पूछने लगे। ऐसी बातें दयाल के लिए नई हैं। उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

'घी टेढ़ी उँगली से ही निकलता है—' दारोग़ाजी ने कहा। उन्होंने सिपाही भेजकर शीतल दियारे की सब नावें ज़ब्त करा लीं। उस गाँव के जितने भी आदमी उस दिन बाज़ार आए थे, सब पकड़ लाए गए। उन लोगों ने भी दयाल के ही घर बहुत से अपरिचित सुराजियों के ठहरने की गवाही दी।

'वे किसलिए तुम्हारे यहाँ आते हैं?' दारोग़ा ने पूछा।

'सुराज के काम से।'

''साफ़ साफ़ बतला!'' खुफ़िया ने दयाल को एक तमाचा लगाते हुए कहा—'कहता क्यों नहीं, डकैती के लिए।'

पुलिस अधिकारियों को सारा शीतल दियारा बमवालों और डकैती के माल से भरा दिखाई देने लगा। वे उस पर धावा करने की व्यवस्था करने लगे। ज़िले से उन्होंने पलटन मँगा भेजी। गंगा किनारे जाकर उन्होंने कई सिपाही तैनात कर दिए जिनका काम यह देखते रहना था कि कोई भी नाव शीतल दियारा न जाने पावे। खुफ़िया अफ़सर से दारोग़ाजी ने कहा—'अब वे उस घेरे से नहीं निकल सकते। एक तो वह दियारा ही टापू है। दूसरे बाढ़ के कारण उस टीले के सिवा कोई शरण लेने की उन्हें जगह भी नहीं। आप देखते रहिए, मैं बात की बात में कितने फ़रार मुजरिम पकड़ता हूँ और कितना डकैती का माल बरामद करता हूँ।'

हाजत में बंद किसानों की बुरी हालत हो रही है। वे सब डर के मारे थर-थर काँप रहे हैं। बाहर सड़क पर से वे पिंजड़े में बंद जानवरों-जैसे दिखाई देते हैं। लड़के पहले डरते-डरते उनको झाँककर देखते हैं। सयाने, रास्ता चलते चलते कहते हैं—'ये डाकू हैं!'

'अच्छा हुआ!' बाज़ार के सेठ लोग कहते हैं—'डकैती का मज़ा अब चखो!'

'डकैती का मामला रहता तब भी ग़नीमत था।' पहरे पर खड़े सिपाही कहते हैं—'ये बमकेस के असामी हैं!' फिर उस संबंध के जितने तरह के क़िस्से उन्हें मालूम रहते हैं वे कह सुनाते हैं।

'इन बमवालों की सज़ा फाँसी या कालापानी ही है—' एक सिपाही ने कहा—'उसमें फाँसी ही भली अगर कालापानी हुआ तो इनके प्राण घुल-घुल कर निकलते हैं। ये बराबर सींख़चों के भीतर बंद रखे जाते हैं। वहाँ तीन में एक बात होती है—इन्हें तपेदिक़ की बीमारी पकड़ती है, ये पागल हो जाते हैं या अपने आप फाँसी लगाकर मर जाते हैं। इनका जैसा क़सूर है, अब इन्हें कोई भी ज़िन्दा बाहर नहीं निकाल सकता।'

हाजत में बंद गाँववालों के कानों में ये बातें पड़ती हैं। वे उन पर विश्वास करते हैं। उनमें एक सूकर माझी रोने लगा। उसका साथी जब उसे चुप कराने गया तो सूकर ने रोते रोते कहा—'हमारी यह दुर्गति सुराज के ही कारण हुई है।'

सब लोग दयाल को ही अपराधी मानने लगे। सूकर ने कहा—'न यह गाँधी टोपी पहनता और न हमारी यह दुर्गति होती!'

खुद दारोग़ा की धमकी सुनकर वे अपना फाँसी चढ़ना निश्चित मानने लगे। पर दारोग़ा जी की ज़बान में एक बार थोड़ी मिठास देखकर उन्हें कुछ भरोसा हुआ। उन्होंने छुटकारे की क़ीमत लगा दी है। दयाल के सिवा और किसानों से मोलभाव भी होता रहा है। फ़ी आदमी की जान बख्श देने के लिए सौ रुपए से कम पर दारोग़ा जी तैयार नहीं हैं।

दयाल चुपचाप कोने में बैठा अपने आपको कोसा करता है।

७

ज़िले से हथियारबंद सिपाहियों की टुकड़ियों के पहुँच जाने पर तीन नावों पर सवार होकर उन्होंने शीतल दियारे पर हमला किया वहाँ पहुँचते ही सिपाहियों ने गाँव घेर लिया। उन्होंने संगीनें दिखाकर जो जहाँ था, उसे वहीं खड़े रहने का हुक्म दिया। भय के कारण किसानों के कलेजे सूख गए। बाढ़ आने से भी यह उनके लिए अधिक ज़बर्दस्त विपत्ति है।

हवलदार, दो सिपाही और दारोग़ा को साथ लेकर खुफ़िया अफ़सर सीधे दयाल के दरवाज़े पर पहुँचा। घर में अकेली बूढ़ी माँ हैं। वे दयाल के हाथों में हथकड़ी देखकर ही रोने लगीं।

'फ़रार असामी कहाँ है?' हवलदार ने उनसे डपटकर पूछा। वे रोती ही रहीं।

'ये बहाना कर रही हैं—' खुफ़िया ने कहा—'लेकिन उन्हें छिपा कर भी इन्होंने ही रखा है।'

'वे कहाँ हैं ?' दारोग़ा ने दयाल से डपटकर पूछा।

'मुझे पता नहीं।'

'झूठ बोलते हो।' ख़ुफ़िया ने कहा—'इस घर की ख़ानातलाशी लो।'

घर का दरवाज़ा सिर्फ़ भिड़ा था फिर भी सिपाहियों ने बंदूक़ के कुंदों से किवाड़ों पर इतने ज़ोर से वार किए कि दरवाज़ा चौखट से अलग हो जा गिरा। वे भीतर घुस गए। बूढ़ी माँ भीतरी उसारे के एक कोने में जाँत के पास सहमकर जा बैठीं। वे सिसकती ही रहीं। उन्हें भय होने लगा कि बंदूक़ के कुंदों का अगला वार उन पर ही होगा।

सिपाहियों ने कपड़ों की पोटलियाँ उधेड़कर आँगन में फेंक दीं। हाँड़ी, बर्त्तन सब तोड़-फोड़ डाले गये। सूखता अन्न उन्होंने नाली में डाल दिया। दीवार और खंभों पर वार करने से भी वे बाज़ नहीं आए। फिर भी फ़रार असामी उन्हें नहीं मिले।

आस-पास के घरों के और जो किसान हवालात में रखे गए थे, उनके घरों की भी उसी तरह तलाशी ली गई। अपनी मुक्ति के लिए किसानों ने जिस रक़म का वादा किया था, उसकी वसूली का दारोग़ा-जी ने ख़ास तरह से ख़याल रखा। दुर्भिक्ष में काम आ सकनेवाले जिन गहनों को किसान औरतों ने बचा लिया था, वे सब के सब दारोग़ाजी के सुपुर्द कर दिए गए। अपने घर के मर्दों के छुटकारे की रक़म पूरी करने के लिए वहाँ की औरतों को अपने शरीर के भी सब गहने उतार देने पड़े। फिर घर और खेत की ज़मानत पर वे अपराधी फ़िलहाल के लिए छोड़ दिए गए।

सिर्फ़ दयाल के मामले में उन्होंने और भी सख़्ती से काम लिया। गाँववालों से जाँच करने के बाद फ़रार असामी को अपने घर में टिकाने और फिर उसे भगा देने का उस पर का जुर्म बहुत बड़ा था। मामले की संगीनी का ख़याल करके हवलदार ने उसकी कमर में रस्सा लगाने

का हुक्म दिया। गाँववालों को सबक़ देते हुए दारोग़ाजी ने कहा—'सरकार बहादुर की मुख़ालिफ़त करनेवालों को इसी प्रकार जकड़कर फाँसी लटकाया जाता है।'

दयाल की माँ का धैर्य जाता रहा। वे बाहर निकलकर दारोग़ाजी के पाँव पड़ने लगीं पर दारोग़ा ने उन्हें ऐसा झटका दिया कि वे दूर जा गिरीं।

'चलो!' दारोग़ा ने हुक्म दिया।

कई बार, सुराजियों की गिरफ़्तारी के मौक़े पर दयाल ने दारोग़ा को यही हुक्म देते सुना है। सुराजियों के चेहरों पर मुसकराहट रहती है। वे नारे लगाते हैं। दयाल को भी सुराजी की हैसियत से अपना कर्त्तव्य पूरा करने का ख़याल आया। अपनी कमर में बँधी रस्सी खींचनेवाले सिपाहियों की ओर देखकर वह हँसा। फिर ज़ोर से चिल्लाकर उसने कहा—'वन्दे मातरम्—।'

'आहा!' दारोग़ा ने उसकी ओर देखकर कहा—'यही तो पक्का सुराजी है।'

'बड़ा ख़ौफ़नाक—' हवलदार ने कहा—'ये बमवाले फाँसी के तख्ते पर चढ़ते समय भी यही जपते हैं। जिन जेलों में फाँसी लगती है वहाँ कई बार मेरा पहरा रहा है। सब बमवालों को यही कहकर मैंने टिकठी पर झूलते देखा है।'

रस्से से जकड़ा रहने के कारण दयाल को आगे क़दम बढ़ाने में दिक़्क़त हो रही है। दारोग़ा और हवलदार की रफ़्तार तेज़ है। उनसे क़दम मिलाकर चलने के लिए सिपाही दयाल को घसीटते चलते हैं। घुटनों के छिल जाने पर दयाल ने कहा—'इस तरह तो सुअर घसीटे जाते हैं?'

'तो तू क्या अपने को लाट साहब समझता है?' दारोग़ा ने पीछे फिरकर कहा—'तेरे सामने मख़मल बिछाई जाएगी?'

दारोग़ा की बातों से प्रोत्साहन पाकर सिपाहियों ने अपने क़दम और भी तेज़ कर दिये।

थोड़े फ़ासले पर उनके पीछे-पीछे सोनियाँ जा रही है। उसके पाँव तिलमिला रहे हैं। दो बार फिसल पड़ने के कारण उसकी साड़ी कीचड़ से लथपथ हो गई है। चेहरे पर का आँचल भीग गया है।

नाव पर सवार हो जाने पर दयाल ने उसे देखा। हाथ उठा कर वह कुछ इशारा करना चाहता है। पर उसके हाथ की हथकड़ी और एक सिपाही के हाथ से जुड़ी है। उसने खड़े होने की कोशिश की पर तुरंत ही बन्दूक़ पर संगीन चढ़ाए संतरी ने उसके कंधे की हड्डी दबाते हुए कहा—

'बैठ जा, नहीं तो भोंक दूँगा।'

उन सरकारी नौकरों की पकड़ में पहले पहल ही वैसा आदमी आया है जिसने सरकार बहादुर का तख़्त उलट देने की कोशिश की है।

उबारा

नाव खुल गई। जहाँ उसका लंगर पड़ा था, वहीं सोनियाँ जा खड़ी हुई। वह एकटक पार जाती नौका की ओर देख रही है।

उस पार पहुँचने के पहले, नाव एक काली रेखा के समान दिखाई देने लगी। सोनियाँ ने उसे हाथों का इशारा किया। नाव खिसकती ही गई। फिर वह किनारे पर के वृक्षों की छाया में मिल गई।

दीपा उसे बुलाने जा रही है। बालू उसके पाँव पीछे खींच रखना चाहती है। उसकी दृष्टि नीचे की ओर है। मन ही मन वह अपने आप को कह रही है—'हत्यारिणी'।

सोनियाँ के पास पहुँचकर वह गीली रेती पर बैठ गई। चारों ओर निस्तब्धता छा रही है। सिर्फ़ थोड़ी दूर पर वृक्ष से कुछ पक्षियों की 'चें...चें...' की आवाज़ आ रही है। उसी पेड़ के नीचे खड़े हैं रवि-शंकर। कछार की ओर देखने का उन्हें साहस नहीं हो रहा है।

अँधेरा हो आया। पानी के पास के कछार से किसी जीव के 'कें-कें...' करने की आवाज़ आ रही है। दीपा को उसमें अपने कोसे जाने की कर्कशता सुनाई देती है। चारों तरफ़ की चीज़ें अँधेरे में आँखें फाड़-फाड़कर उसे अपनी ही ओर निहारती दिखाई देती हैं। वह आज भी अपना अपराध स्वीकार करती है।

उस पार के घाट पर रोशनी दिखाई पड़ी। सोनियाँ उसे बर्दाश्त नहीं कर सकी। उसने उधर से मुँह फिरा लिया। इस पार के गाँव की ओर उसने देखा—वह अंधकार में ढँकता जा रहा है। आवरण ज्यों-ज्यों काला बनता है वैसे ही उसे दिखाई देता है जैसे उस ओर से कोई भयानक दैत्य अपना विकराल मुँह बाए उसे ही निगल जाने के लिए आगे बढ़ता आ रहा है। गंगा अलग ही आज उसकी दृष्टि में ख़ूँख़ार बन गई हैं। उबारने के लिए किसी भी दिशा से किसी के हाथ आगे बढ़ते उसे नहीं दिखाई देते।

रात हो जाने पर दीपा उसे समझा बुझाकर घर वापस ले चली।

शीतल दियारे के बाढ़ से बरबाद होने की ख़बर उस पार तथा आस-पास के इलाक़ेवालों को लग गई है। साधारण मनुष्यता के नाते वे मुसीबत से परेशान अपने साथी मनुष्यों की मदद पहुँचाने के लिए उत्सुक हैं। परंतु गाँव का मुखिया ही बाधक हो रहा है। उसने गाँव-वालों से कह रखा है 'उस दियारे के बहुत से लोगों का नाम पुलिस के बदमाशोंवाले रजिस्टर में दर्ज है। उनकी सहायता करनेवाले लोग पकड़कर हवालात में बंद कर दिए जाएँगे। दारोग़ाजी की ऐसी ही हिदायत है। शीतल दियारे की मदद करना सरकारी क़ानून के ख़िलाफ़ होगा।'

मठिया के बाबा ने यह सुना तो उनका चेहरा तमतमा आया। उन्होंने कहा—'तुम्हारा सरकारी क़ानून? पहले तुमने अपनी मर्ज़ी से लूट की, सारी ज़मीन—यहाँ तक कि इस गंगा की मिट्टी और इसकी प्राकृतिक देन से भी इसके किनारे बसनेवालों को वंचित कर दिया। जिस किसी ने विरोध किया, वही क़त्ल हुआ। अब तुमने क़ानून बनाया है कि लूट और ग़ुलामी से बचने की कोशिश करनेवाले बदमाश हैं। बाढ़ से बचा खुचा अपना धन, सरकारी मुलाज़िमों के हवाले न कर देनेवाले गुनाहगार हैं। उन गुनाहगारों को भूख से तड़पते समय एक टुकड़ा रोटी

देनेवाले, हवालात में रखे जाएँगे ! तुम अपना यही क़ानून हमसे भी मनवाना चाहते हो ?'

गाँववालों के इकट्ठा होने पर बाबा ने उन पर शीतल दियारेवालों के एहसानों की याद दिलाई। जब एक बार इधर सूखा पड़ा था तो दियारे के किसानों ने ही इस पार के किसानों की मदद, अगली फ़सल होने तक, बराबर की थी।

बाबा को शीतल दियारे की मदद के लिए स्वयं आगे जाते देखकर किसानों ने घर-घर चंदा लगाया और अन्न इकट्ठा किया। थोड़ा अँधेरा होने पर उन्होंने उसे नाव पर लादा। गाँव के कुछ उत्साही युवक उसे दियारे के पीड़ित किसानों के पास पहुँचा आने के लिए रवाना हुए।

और एक डोंगी में बाबा ख़ुद भी उनके साथ चले।

पतवार के छपछप से रविशंकर की तंद्रा दूर हुई। वे उठ बैठे। उन्होंने सचिता को भी जगा दिया। आवाज़, उनके नज़दीक आती जा रही है। उन्होंने सोचा—'वे पुलिसवाले फिर धावा करने आ रहे हैं।'

वे भागकर एक वृक्ष की आड़ में जा खड़े हुए। वे ऊपर चढ़ना चाहते थे परंतु नाव पर के कोलाहल के बीच में उन्हें एक परिचित आवाज़ सुनाई पड़ी—'भलाई कैसी ? हमारे काम से तो सिर्फ़ यही साबित होता है कि हम हत्यारों के साथ नहीं हैं।'

नाव और डोंगी दोनों किनारे आ लगे। लोगों के कछार पर उतरने के बाद बाबा ने कहा—'गाँववालों को ख़बर दो ! उनके कुछ आदमी आ जाएँगे तो अनाज ढो ले जाने में सुविधा होगी।'

उनके चले जाने पर अकेले बाबा किनारे पर टहलने लगे। पेड़ के नीचे से वे दोनों उनके पास आए। सचिता ने उन्हें सारी कहानी सुनाई। फिर रविशंकर ने कहा—'इस दियारे की बहुत सी मुसीबतों के लिए तो मैं

ही ज़िम्मेदार हूँ। मैं ख़ुद जाकर अपने को पुलिस के सिपुर्द कर देता हूँ, तब तो वे इतने निरपराध लोगों को नहीं सताएँगे ?'

वे हत्या लगे व्यक्ति की भाँति सिर नीचा करके खड़े रहे। बाबा उनके सिर पर हाथ फेरकर समझाने लगे—'तुम तो उनके लिए निमित्त मात्र बने हो। इस मामले में कोई भी किसी की मुसीबतों का ज़िम्मेदार नहीं है। असल में पूछो तो यह झगड़ा ही शिकार और शिकारी का है। आम लोगों को सताने का पुलिस ने क़ानूनी हक़ हासिल कर लिया है। जहाँ कोई कारण न हो, वहाँ लूट-पाट मचाने के लिए पुलिस दूसरे बहाने ढूँढ लेती है। आजकल कौन सा इलाक़ा उनके ज़ुल्म से बचा है ? जिनके हाथ में ताक़त है वे असहाय, निर्बल लोगों को अपना शिकार बना रहे हैं। इस समय असहाय और निर्बल बने रहना ही सब अपराध और मुसीबतों की जड़ है। कोई भी बहाना न मिले, तब भी, ग़ुलाम बने मुल्क के लोगों को इस प्रकार की मुसीबतें झेलने के लिए मजबूर होना ही पड़ता है। बकरे की माँ कब तक ख़ैर मना सकती है ?'

'लेकिन मेरे कारण इन लोगों का जो नुक़सान हुआ है उसकी पूर्त्ति तो मैं करना ही चाहता हूँ।'

'यह पूर्त्ति करना अवश्य ही तुम्हारे शरीर में छिपी आदमियत का तक़ाज़ा है। परंतु इसके लिए तुम्हें सही रास्ता लेना चाहिए, अपने को पुलिस के हवाले कर देने से क्या होगा ?'

उनकी बातचीत सुनकर बिरुआ भी डोंगी से उतर आया। रवि-शंकर को देखते ही वह उनका हाथ पकड़कर उनके पास जा खड़ा हुआ। उन दोनों की पुरानी दोस्ती है।

'अब यह बच्चा भी ख़तरनाक बन गया है।' बाबा ने उसकी ओर दिखलाकर कहा—'वे इसे भी पकड़ ले गए थे।'

'इसे ?'

'हाँ, मुझसे पूछताछ करने के लिए—' बिरुआ ख़ुद कहने लगा—

'पर मैं बिलकुल चुप रहा। उन्होंने उस दिन शाम के बारे में पूछा—हम जिस बदमाश को खदेड़ रहे थे वह तुम्हारी नाव में जाकर छिपा था? मैंने कहा—मैं नहीं जानता। तब वे मुझे एक दूसरे कमरे में अपने अफ़सर के पास ले जाने लगे। रास्ते में मैंने बाबूजी को देखा। वे पिंजड़े में बंद थे। मुझे देखकर सीख़चों के बीच से वे कुछ कहना चाहते थे, पर संतरी ने उन्हें लाठी के हूरे से पीछे ढकेल दिया। ऐसा तो वह पाजी था।' वह दाँत पीसने लगा।

'इसका दिल भी देखो, किस हद तक उन्होंने जलाया है।' बाबा ने कहा।

'वह अफ़सर क़साई था।' बिरुआ अपनी आगे की कहानी कहता गया—'उसका मुँह ठीक छुछूँदर-जैसा था। वह मँहकता भी वैसा ही था। मुझे देखकर जब वह हँसता था, तब मेरे मन में आता था कि उसके पेट में छुरा भोंक दूँ। मुझसे उसने कहा कि अगर मैं तुम्हें (रविशंकर) पकड़ा दूँ तो वह मुझे भर पेट मिठाई खिलावेगा। पर मैंने कहा—मैं जानता ही नहीं। तब वह दाँत पीसकर मुझे गालियाँ देने लगा। उसने मुझे कई तमाचे भी लगाए। मेरे मुँह से ख़ून निकलने लगा, तब भी वह मारता ही रहा। ऐसा वह क़साई था! वहाँ जितने थे सब के सब क़साई थे!'

जो कुछ उस पर बीती थी, इस समय वह सब कड़ुवे से कड़ुवे रूप में उसे फिर से याद आ गयी। वह उसे बर्दाश्त नहीं कर सका। वह कहने लगा - 'मेरी चले तो मैं उन सबको गंगा में डुबो दूँ।'

गाँव की ओर से टोली बाँधकर लोगों के आने की आहट मिली। बिरुआ को अपनी बहन की भी बोली सुनाई पड़ी। वह उसी ओर दौड़ पड़ा।

बाबा के आने की ख़बर सुनकर गाँववालों के साथ दयाल की माँ,

सोनियाँ और दीपा भी घाट के किनारे आई। बच्चा इस समय बूढ़ी माँ की गोद में सो रहा है। बाबा ने उन्हें बड़ी नाव पर सवार करा दिया। माल उतरते ही वह नाव खोल दी गई।

डोंगी भी अब खुलने के लिए तैयार है। सचिता के हाथ में उसका एक डाँड़ है। किनारे से बँधी रस्सी रविशंकर ने खोलकर उस पर डाल दी, पर वे ख़ुद सवार नहीं हुए। प्रवाह के ज़ोर से डोंगी खिसकने लगी। बाबा ने उनका हाथ पकड़कर कहा—'आओ!'

'किसलिए?' अपना सिर बिना ऊपर उठाए ही रविशंकर ने उनसे पूछा।

'नए संग्राम के लिए!'

'सदा तो हार ही होती है।'

'छिटकी चिनगारी बुझ जाती है, धधकती ज्वाला की चिनगारी को बुझाना आसान नहीं होता। आजकल के अधिकारी छिटकी चिनगारी बुझा दे सकते हैं, पर अपने ध्वंस के लिए, वे स्वयं जो ज्वाला धधकाते जा रहे हैं, वह नहीं बुझने की! तुम्हें उसी ज्वाला की चिनगारी बनना है।'

'उतनी मुझमें शक्ति नहीं!'

'अपने में जितनी शक्ति होती है, उतनी पूरा करनेवाले बिरले ही होते हैं।'

'एक क़दम भी तो अब तक आगे नहीं बढ़ा।'

'तब, नया जन्म लो। अगला दिन ही तुम्हारा जन्मदिन हो!'

बाबा ने उन्हें डोंगी पर खींच लिया।

नई धारा

इस बार गंगा की नई धारा मठिया के पास से ही घूम पड़ी है। गंगा यहाँ अनवरत घहराती रहती हैं। पानी का नया वेग आने पर उनकी घहराहट हुंकार का रूप धारण करती है। वह हुंकार गंभीर बनकर बहुत दूर तक सुनाई देती है।

यहाँ का किनारा बहुत ऊँचा है। अच्छे तैराकों के छलाँग लगाने के लिये भी यह बहुत ही सुन्दर प्राकृतिक मंच है। वे सवेरे-शाम आकर उस पर खड़े होते हैं, एक बार नीचे झाँकते हैं, गंगा उन्हें हाथ पसारे गोद में लेने को तैयार दीखती हैं—वे तत्काल नीचे कूद पड़ते हैं।

गंगा उन्हें उछालती उछालती दूर खींच ले जाती हैं।

देश के वायुमंडल में भी एक नई धारा फूट निकली है। धरती ही इस धारा की जननी है। मालूम पड़ता है मनुष्य द्वारा मनुष्य पर होनेवाले अत्याचार वह और अधिक सहने के लिए तैयार नहीं, इसी से उस कालिमा को धो डालने के लिए ही उसने अपनी कोख से, एक कायापलट करनेवाली नवीन धारा को जन्म दिया है।

इसके भी कछार बहुत ऊँचे हैं। बहुत सी प्रगतिशील संस्थाएँ यहाँ

आकर खड़ी हो गई हैं। इस मौक़े पर कुचले हुए, पराजित, दुर्बल दीखनेवाले लोगों में भी अद्भुत क्षमता आ गई है। वे भी अपनी क्षुद्र दैनिक भावनाएँ भूलकर ऐतिहासिक प्रेरणा के अस्त्र बनने लगे हैं।

नौजवानों के अंग फड़क रहे हैं। दियारे के युवक और भी निर्भीक हैं। धरती से निकली धारा की घहराहट सुनकर वे घर से निकल पड़े हैं। उसका हुंकार उन्हें निकट बुलाता जा रहा है। दूर-दूर से आकर वे तीर पर एकत्र हुए हैं। अब वे कूदना ही चाहते हैं।

'अरे!' भयभीत होनेवाले लोग उन्हें रोककर कहते हैं—'इस धारा का रंग तो लाल है। ख़ून से......।'

'लेकिन इसी धारा से ही सींची जाकर हमारी धरती माता लहराती है!' कुशल तैराक उत्तर देते हैं—'यह भी गंगा की ही एक शाखा है। वैसी ही पवित्र! शीतल! हमारा उद्धार करनेवाली!'

और तब वे सचमुच ही उसमें कूद पड़ते हैं।

देशव्यापी आन्दोलन का तूफ़ान उठने पर वे भी उसी के साथ बह चले।

ये नमक-सत्याग्रह के दिन हैं। आन्दोलन संबंधी कार्य दियारे के इलाक़े में भी शुरू हो गए हैं। बाबा की मठिया में ऐसा दीखता है जैसे सच में ही वहाँ किसी भारी भंडारे की व्यवस्था हो रही हो। गाँव के अधिकांश लोग वहाँ इकट्ठे होते हैं। औरतों और बच्चों से लेकर बूढ़ों तक सब लोग मठिया में चलनेवाले कामों में दिलचस्पी रखते हैं।

वहीं एक कुटिया में दिन भर कड़ाह चढ़ा रहता है परंतु उसमें पूरी नहीं बनती। लोग आस पास से नोनी मिट्टी इकट्ठी करके उससे नमक तैयार करते हैं। अपने इसी कार्य द्वारा वे सरकार के ज़ुल्मी क़ानूनों की खुले आम अवज्ञा का एलान करते हैं।

इसी नमक-सत्याग्रह का नाम लोगों ने 'बाबा का यज्ञ' रख लिया है। जो नवयुवक-समाज राजदंड द्वारा हमेशा भय से काँपते रहने को बाध्य

होता रहा है, उसी ने इस समय उस यज्ञ का नेतृत्व ग्रहण किया है। अब और अधिक भय खाते रहना, वह समाज अपने स्वभाव और शान के ख़िलाफ़ समझता है। अपने को सतानेवाले, दबाकर रखनेवाले के ख़िलाफ़ उसने विद्रोह किया है, खुली लड़ाई छेड़ दी है। इस लड़ाई का संबंध उनकी अपनी आज़ादी के साथ साथ देश की आज़ादी से भी है। इसीलिए उनकी टोली में जो नारा सर्वप्रधान बन गया है, वह है—'आज़ादी या मौत।'

शाम को, जब सब नौजवान तैरने चले जाते हैं तो उस मौक़े पर मठिया की रखवाली, और वहाँ की कुटिया में चढ़े कड़ाह की देखभाल का भार सिर्फ़ औरतों पर ही रह जाता है। वे भी, बारी बारी से कड़ाह के चूल्हे में आग सुलगाने के लिए रहतीं और नहाने जाया करती हैं।

आज अब कड़ाह के पास रहने की, दीपा और सोनियाँ की बारी, ख़त्म होने का समय आ गया है। जिनकी बारी शुरू होनेवाली है, उनके इंतज़ार में, सोनियाँ बार-बार बाहर झाँक रही है। एक बार उधर झाँकते समय उसकी दृष्टि बाज़ार की ओर के रास्ते पर गई। वह सहसा चिल्ला उठी—'वे आ रहे हैं।'

उधर, एक बग़ीचे के पास, उसे बहुत-सी धूल उड़ती दिखाई पड़ी। जब पुलिस किसी की गिरफ़्तारी के लिए आती है, तभी उस ओर, वैसी धूल दिखाई देती है। दीपा को बाहर बुलाकर उसने कहा—'उधर देखो!'

'घुड़सवार .....'

'हाँ, वे ही तो हैं!' सोनियाँ का ख़ून खौलने लगा।

'वे तो बग़ीचे के इधर आ गए!'

'घुड़सवार सिपाही!'

'हाँ!'

'गाँव की ओर जाएँगे ?'

'नहीं' दीपा ने आँखें गड़ाकर देखते हुए कहा—'उधर का रास्ता तो छोड़ दिया। वे इधर ही आ रहे हैं!' उसका स्वर किसी भारी अनिष्ट की आशंका अनुभव करके काँपने लगा।

वे दोनों कुटिया के भीतर चली गईं।

पाँच सशस्त्र घुड़सवार सिपाही मठिया के दरवाज़े पर आ खड़े हुए। उनकी वर्दी पसीने से भीग रही है। घोड़ों के मुँह से भी फेन टपक-टपक-कर उनकी टापों के पास गिर रहा है। इसी से, जिस जल्दी में वे आए हैं, उसका अंदाज़ा लगाया जा सकता है।

घोड़ों की लगामें उन्होंने घिरावे के बाँस से बाँध दीं। अपनी अपनी बंदूकें कंधे से उतारकर उन्होंने हाथों में ले लीं। उनमें गोलियाँ भर कर वे 'तैयार' खड़े हो गए।

कुछ देर बाद, उनके पीछे पीछे, चौकीदार और सिपाहियों की टोली के साथ थानेदार भी मठिया के दरवाज़े पर आ पहुँचे। उन लोगों ने चारों तरफ़ से मठिया घेर ली।

सोनियाँ घबरा रही है। दीपा के शरीर से चिपककर उसने पूछा—'अब क्या होगा, सखी ?'

दीपा ने अपने होंठ दाँतों से कसकर दबा रखे हैं। किसी तरह का भय अथवा चीत्कार उनसे नहीं निकल सकता। सोनियाँ ने उस चेहरे पर हठात् एक परिवर्त्तन देखा। वह बिजली के तार से छू जाने की भाँति उसे छोड़कर अलग हो गई। उसकी दृष्टि कोने में पड़े बच्चे पर जा पड़ी। वह अभी-अभी सोकर उठा है। सोनियाँ ने उसे अपनी गोद में उठा लिया।

थानेदार के साथ लाठी ऊँची किए कई सिपाही उस कुटिया में प्रवेश करने के लिए आगे बढ़े। परंतु दीपा दरवाज़े पर खड़ी है। आग की ज्वाला बढ़ाने के लिए जो जलती हुई लकड़ी वह आगे खिसकाना

चाहती थी, उसके हाथ में ही रह गयी है। सिपाहियों की आगे बढ़ने की हिम्मत नहीं हो रही है। उसके चेहरे की आँच ही उन्हें दूर खड़े रहने के लिए बाध्य कर रही है।

उन सिपाहियों को अगल-बगल खिसकाकर उनका हवलदार आगे बढ़ा। उसने कर्कश स्वर में अपने अधीन सिपाहियों को ललकारा—'नामर्द ! डरते हो ! अदना औरत से !'

उसकी आवाज़ थर थर कर रही है। जितना सिपाहियों में भी नहीं उतना दुःसाहस करके अपने में, वहाँ खड़े रहने की शक्ति वह संचित कर रहा है।

'हम औरतों से नहीं लड़ते !' कहकर एक सिपाही वहाँ से हटने लगा।

'अरे, यह दियारे की औरत है, किसी बड़े अफ़सर की नहीं ! इसके साथ आदमियत कैसी !' कहकर हवलदार ने डपटकर दीपा को हुक्म दिया—'हट ! चुड़ैल !'

फिर भी उसके टस से मस न होने पर उसने अपने पीछे के सिपाहियों को हुक्म दिया—'इसे पकड़कर उस कड़ाह में डाल दो ! अभी ठंढी हो जाएगी।'

इस बार सचमुच ही एक सिपाही आगे बढ़ा। उसने अपनी लाठी ऊँची की। दीपा की दृष्टि भी उस लाठी के साथ साथ ही ऊपर उठी। उसकी पलकें अब भी नीचे गिरने के लिए तैयार नहीं हैं परंतु सिपाही की लाठी बड़े वेग से नीचे गिरी। वह दीपा के बीच मस्तक पर पड़ी।

'ठाँय'

दीपा की आँखें, झटके से बंद हो गईं। उसके मुँह से एक अस्पष्ट आवाज़ भी निकली फिर उसे अपने चारों ओर अँधेरा दिखाई देने लगा। उसके पाँव भी जवाब देने लगे। किसी डाली के वृक्ष से अलग हो जाने की भाँति बिना किसी आश्रय के वह ज़मीन पर आ गिरी।

अपना माथा उसने दोनों हाथों से पकड़ लिया। उसके हाथ माथे को दबा रखना चाहते हैं मानों वहाँ पर पड़ी दराज़ जोड़ने की वे कोशिश कर रहे हों। परंतु कोशिश बेकार है। उसके हाथ तुरंत ही शिथिल होकर नीचे आ गए। उनमें मस्तक को थाम रखने की भी ताक़त नहीं रह गई है।

हवलदार के साथ साथ कई सिपाही कुटिया के भीतर घुसे। सोनियाँ को उनके चेहरे डाकुओं जैसे भयानक लग रहे हैं। वह दीपा के पास आकर खड़ी हो गई। अपनी सखी के माथे से खून निकलता देखकर वह चीत्कार करना चाहती है। उसका मुँह खुलते ही हवलदार ने उसकी ओर देखकर घुड़कते हुए कहा—'तू चिल्लाई नहीं, कि मैंने तेरा भी झोटा पकड़ अभी इस कड़ाह में डाला।'

वे कड़ाह की ओर आगे बढ़े। दरवाज़ा ख़ाली हो गया है। उधर से सोनियाँ बच्चे को अपनी छाती से चिपकाए बाहर निकल पड़ी। उसके पाँवों में अद्भुत शक्ति आ गई है। सदर दरवाज़े पर खड़े घुड़सवारों की भी उसे टोकने की हिम्मत न हुई। वह उनके बीच से निकलते ही चीत्कार करती हुई दौड़ पड़ी।

गंगा की ओर।

दीपा के लिए उस भाँति बैठे रहना भी मुश्किल हो रहा है। चक्कर आ जाने के कारण उसका सिर अब भी घूम रहा है। सिर्फ़ होठों पर कसकर चिपके हुए दाँत किसी सीमा तक उसे रोक रहे हैं।

सिपाहियों ने अपनी लाठियों से चढ़ा हुआ कड़ाह उलट दिया। उसका पानी छलककर दीपा के अंगों पर पड़ा। इस बार वह चीख़ उठी। साथ ही वहीं लुढ़क गई।

'अब भी तू यहाँ से नहीं हटेगी?' एक ओर खड़ा हवलदार उस पर दाँत पीसने लगा—'देखता हूँ तुझमें कितनी ताक़त है?'

कड़ाह का नमक मिला खौलता पानी बहने लगा। दीपा का शरीर अब भी उस प्रवाह के बाहर निकलने में बाधा दे रहा है। उसकी साड़ी अस्तव्यस्त हो गई है। जलन से जगह-जगह सफ़ेद फफोले दिखाई दे रहे हैं।

'बेहोश हो गई?' हवलदार ने अपने सिपाहियों से कहा—'क्या खड़े-खड़े देखते हो? बाग़ियों का यह अड्डा ज़ब्त किया गया है। इसे बाहर करो!'

दो सिपाहियों ने दोनों ओर से उसके हाथ पकड़े। उनके दूसरे हाथ में लाठी है। एक अब भी उसके ख़ून से लाल दीख रही है। दीपा निर्जीव गठरी सी बन रही है। सिपाहियों ने उसे पाँवों के बल खड़ा करने की कोशिश की। परंतु उसके पाँवों के भी फफोले उभर आए हैं। पैरों पर वह अपना भार नहीं रख पाती। सिपाही उसे घसीटने लगे। उसके अंग के कितने ही फफोले ज़मीन से रगड़ खाकर फट जाते हैं।

उसे घसीटते हुए सिपाही मठिया के अहाते के बाहर ले आए। मरे पशु की लाश की भाँति उन्होंने उसे एक पीपल के नीचे पटक दिया। फिर अपने कार्य से निवृत्त एक दृष्टि उस पर फेंककर वे वापस लौट गए।

बेहोशी की हालत में भी वह उठने की चेष्टा करने लगी। परंतु हाथों से ज़मीन पर भार नहीं दे पाती। उसके हाथ, थोड़ी सी मिट्टी खरोंच कर ही शिथिल पड़ जाते हैं।

उसके होंठों पर जमे दाँत धीरे धीरे ढीले पड़ने लगे। मुँह से कराहने के स्वर में निकला—'माँ......'

उसकी वह आवाज़ सम्भवतः केवल अकेली गंगा ही सुन रही हैं। वे सांत्वना देने के लिए स्वर ऊँचा करती हैं। उसे उनका घहराना सुनाई देता है—'आ...आ...आ...'।

प्रतिशोध

सूर्य की आख़िरी किरणें उसके चेहरे पर पड़ रही हैं। ख़ून का रंग गहरा लाल बन गया है। उसमें जलते अंगारों की सी चमक है। मुँह का आकार कुछ छोटा दीखता है। बालों की कई लटें सामने ललाट को ढक रही हैं। उनके बीच से उसका चेहरा नववधू का जैसा दीखता है। माँग पर ठीक वहीं जहाँ सिंदूर लगाती थी, सिर फटा हुआ है।

हाथ अब भी मरोड़ा हुआ नीचे दबा है। इससे स्पष्ट पता चल जाता है कि प्रहार करनेवालों ने उसे मृतक जानकर ही, उस भाँति पटक दिया है। वह अपना हाथ सीधा करने की चेष्टा में छटपटा रही है। उसकी बिरौनियाँ भी ख़ून से इस भाँति चिपक गई हैं कि आँखें खोल पाना कठिन हो गया है।

ज़नाने घाट से कई औरतें उसके पास पहुँचीं। एक ने उसका चेहरा देखकर जैसे कुछ भी समझ न पाई हो, इस भाँति कहा—'दीपा हमारे गाँव में सबसे सुन्दर......'

उसने दीपा के मुँह में थोड़ा सा गंगाजल डाल दिया। उसकी आँखों पर भी पानी के छींटे दिए। फिर अपने आँचल से उसका मुँह पोछने लगी। उसका आँचल रक्त से रँगता जाता है। उस जगह की मिट्टी भी लाल होती जाती है।

एक एक कर नहाने के लिये जानेवाले मर्द भी वहीं रेती पर आ कर इकट्ठे हो गए। रविशंकर ने अपनी धोती से कपड़ा फाड़ा। उसकी तहें लगाकर उसके माथे पर रखा। कपड़ा तुरंत ख़ून से भर गया। उस रंग में उसका चेहरा भी फीका पड़ता दिखाई दिया। बाबा को बुला लाने के लिए एक आदमी भेजा गया।

वे उसे उठाकर भोला माझी की मड़ैया में ले गए। घाव बाँध दिए जाने पर उसे कुछ होश हुआ किन्तु वेदना के कारण वह बेचैनी भी ज़ाहिर करने लगी। पीड़ा सहन करने की सामर्थ्य से उसका प्रभुत्व कम होने लगा है। बीच बीच में वह कहती है—'गरम! बड़ा गरम है। मुझे इस खौलते कड़ाह से निकालो! थोड़ी देर गंगा में डुबो रखो! मैं अभी अच्छी हो जाऊँगी!'

आँखें खोलने पर उसकी पहली दृष्टि रविशंकर पर पड़ी। उसकी आँखें तरल रहने के कारण बड़ी स्निग्ध बन गई हैं। प्रार्थना की ध्वनि में उसने कहा—'मैं जीना चाहती हूँ।'

बाबा मठिया से औषधि निकालने गए, परंतु दरवाज़े पर खड़े संतरियों ने उनका रास्ता रोक दिया 'अब इस पर सरकारी क़ब्ज़ा है। किसी को भी भीतर घुसने का हुक्म नहीं है।'

गाँव के एक बूढ़े ने उनसे बिनती करके काम निकालना चाहा। उसने कहा—'भाई, तुमने एक बे कसूर बिचारी का ख़ून बहाया है। अगर अब भी उसके प्राण बचा लिये जा सकते हों तो उसमें बाधा क्यों डालते हो?'

'उसके बच जाने के लिए ही तो उसे जलाया नहीं गया!' एक सिपाही ने बूढ़े की बातचीत में ही काटते हुए कहा।

वे निराश होकर वापस लौटने लगे। एक माझी युवक से नहीं रहा गया। उसने सिपाहियों की ओर देखकर ग़ुस्से से काँपते स्वर में कहा—'इस गंगा किनारे की बहुत सुन्दर संतान की तुम हत्या कर रहे हो,

चांडालो ! आज सब अंधेर मचा लो ! कभी हमारी भी बारी आएगी !'

सिपाही गुमान से ऐंठ रहे हैं। उन्हें अपनी वर्दी और बंदूक पर बहुत भरोसा है। मठिया पर दखल जमाए रहने की विजय का भी उन्हें गर्व है। उन्होंने दुत्कार के शब्दों में उस युवक से कहा—'जाओ ! हटो यहाँ से ! हम सबको देख लेंगे।'

विफल होकर लौटने के लिए बाध्य किए जाने के कारण बाबा के चेहरे पर भी ख़ून चढ़ आया। उन्होंने वहाँ से जाते-जाते, सिपाहियों की ओर बिना देखे ही उनसे कहा—'तुम सबको इस भाँति नष्ट नहीं कर सकते। रोटी के टुकड़े के लिए जिनके हाथ तुमने अपना देश और धर्म तक बेच दिया है, उनमें भी इस विशाल देश के समस्त निवासियों की हत्या करने की ताक़त नहीं है।'

उस युवक माझी को प्रतिशोध लेने का मौक़ा उसी रात में मिल गया। जिस सिपाही ने दीवा पर प्रहार किया था, उसका घर गंगा-पार पास के ही एक गाँव में था। घर के उतने निकट आ जाने पर एक बार वहाँ घूम आने का लोभ वह सिपाही सम्हाल न पाया। वह अपने हवलदार से, अगले दिन दोपहर के पहले लौट आने का वादा कर, रात में ही गंगा-पार करने निकल पड़ा।

परंतु, कोई भी माझी रात में नाव खोलने के लिए तैयार नहीं। सिपाही ने उनका घर उजाड़ देने की धमकी देकर उन्हें घर से बाहर निकलने को मजबूर किया। उन्हीं लोगों में वह माझी युवक भी है।

उस सिपाही के प्रति तीव्र घृणा के कारण अथवा सारे दिन नाव खेते रहने की थकावट से ही, उन माझियों के हाथ, डाँड़ पकड़ने पर जल्दी-जल्दी नहीं उठ रहे हैं। सिपाही उन्हें जल्दी-जल्दी खेने के लिए बाध्य कर रहा है। माझियों के एक बार झिझक दिखाने पर वह उन्हें गाली भी दे बैठा।

बीच गंगा में नाव पहुँच जाने पर माझी युवक के हाथवाले डाँड़ की रस्सी टूट गई। डाँड़ उसने ऊपर उठा लिया। एक क्षण के लिए मालूम पड़ा जैसे वह डाँड़ की मज़बूती की जाँच कर रहा हो। उसका गुमसुम चेहरा देखकर किसी को उस पर संदेह नहीं हुआ। पर दूसरे ही क्षण उसके डाँड़ का बाँस सिपाही के सिर पर अन्धाधुन्ध पड़ने लगा। पहले आघात से ही उसकी लाल पगड़ी गंगाजी में जा गिरी। युवक माझी गिनता जाता है—'यह तुम्हारी गालियों के लिए। यह, हमसे बेगार लेने के लिए, और यह, असहाय अबला पर वार करने के लिए !'

डाँड़ का वार बचाने के लिए सिपाही ख़ुद ही गंगा में कूद पड़ा। दूसरे माझी उसे फिर से नाव पर खींच लेने के लिए तैयार खड़े हैं। परंतु सिपाही नाव के नीचे पड़ गया है। वह तैरना भी नहीं जानता। माझियों को वह उतराता दिखाई नहीं पड़ा। उन्होंने उसकी प्रतीक्षा भी नहीं की। वे अपनी नाव वापस लौटा लाए।

यह ख़बर सारे गाँव में फैल गई। जो लोग पहले से ही भयभीत हो रहे थे उन्होंने कहा—'अब तो अन्धेर मचाने का उन्हें बहाना मिल गया। गाँव की ख़ैरियत नहीं !'

परन्तु माझियों के कार्य से संतोष पाने और उसका समर्थन करनेवालों की भी कमी नहीं है। वे कहते हैं—'जब उन्हें बहाना नहीं मिला था उसी समय वे कब बाज़ आते थे ? उन्होंने जितना अंधेर मचा रखा है, उसी से तो हम उनसे प्रतिशोध लेने के लिए बाध्य हुए हैं ! इस तरह के प्रतिशोध से और कुछ नहीं तो जब वे निरपराध लोगों पर डंडे का वार करने लगेंगे, उस समय, कम से कम उन्हें एक क्षण के लिए, यह बात तो याद आ ही जाएगी कि उसी भाँति पुनः कभी उनके सिर पर भी डंडे पड़ सकते हैं। अपने सिर की क़ीमत वे तभी समझेंगे और तभी वे दूसरों के सिर की हिफ़ाज़त करना भी सीखेंगे।'

विसर्जन

सूर्यास्त के समय ही उसका अंत हुआ। वे उसके अंतिम संस्कार और विसर्जन की तैयारी करने लगे। इसी समय उन्हें ख़बर मिली—'फ़ौज आ रही है। उसमें बहुत से गोरे हैं। उन्हें जो भी अकड़कर चलता दिखाई देता है, उस पर वे गोलियाँ चला देते हैं।'

फ़ौज की एक टुकड़ी ने लहराते हुए खेत उजाड़ने का काम लिया है, दूसरी रास्ते के किनारे बने मकान और किसानों के झोपड़ों में आग लगाती आ रही है, तीसरी 'बाग़ियों' के गिरफ़्तार करने के काम में पुलिस की मदद कर रही है। वे बहुत से लोगों को बाँधकर थाने की हवालात में भेजते जा रहे हैं। कितने ही उनकी गोलियों से घायल भी हो चुके हैं।

कई आदमियों के चेहरों पर घबराहट और चिंता की रेखाएँ दिखाई पड़ने लगीं। बाबा ने उन्हें संबोधन कर कहा—'अभी तो लड़ाई सिर्फ़ शुरू हुई है। तुम्हारे ऊपर बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी है। इस जीवन-मरण की लड़ाई में हमें विजयी होना ही पड़ेगा। एक बार गंगा और यह भूमि आज़ाद हो गई तो फिर हम यहाँ पर नई सृष्टि करेंगे। झोपड़ों के बदले तब हम यहाँ आलीशान इमारतें खड़ी कर लेंगे। हमारी ज़मीन में ही, दृष्टि के उस पार, क्षितिज तक, फिर से फ़सल

लहराएगी। उस समय अत्याचार और अन्याय द्वारा बहाए हुए ख़ून के सारे धब्बे गंगाजी की लहरों से धुल जायँगे। अत्याचार करनेवालों के पाँवों के कोई भी चिह्न यहाँ न रह जाएँगे परंतु, वैसा समय, निकट लाने के लिए, अभी हमें लड़ना ही पड़ेगा। बरबादी चाहे जितनी भयंकर क्यों न हो हमें सहन करनी ही पड़ेगी।'

थोड़ी देर तक सब मौन रहे। जिस आत्मा ने अपने शरीर से विदाई ली थी उसकी वे शांति-कामना करते रहे। फिर वे उस अवशेष को उठाकर गंगा किनारे ले गए।

चिता लगाते समय उन्होंने देखा, उस ओर मठिया भी जलने लगी है। उधर से, दौड़ते हुए कई आदमियों ने आकर ख़बर दी—'उनका एक जत्था इस स्मशान की ओर भी आ रहा है!' पुलिस की निगाह में रहनेवालों को, उन्होंने गाँव की ओर जाने से भी मना किया।

सब लोग बाबा की ओर देखने लगे। उनका चेहरा अब भी पहले की ही भाँति शांत है। घबराहट या उत्तेजना की कोई भी रेखा उस पर दिखाई नहीं पड़ती। नौजवानों को संबोधन कर उन्होंने कहा—'शत्रु से ज़बर्दस्त मोर्चा लेने की तैयारी करो! उत्तेजना में अपना ख़ून बहा देना वैसा कठिन नहीं होता। उससे कोई विशेष लाभ भी नहीं! उस ख़ून को उपयोगी कार्य में लगाना ही मुख्य है।'

उन्होंने नौजवानों को दूर पर बँधी माझियों की नाव दिखलाई। उसे लेकर उन्हें उस पार चले जाने की सलाह दी। नौजवान, बाबा के भी साथ चलने पर ज़ोर देने लगे परंतु उन्होंने कहा—'मैं ऐसा नहीं कर सकता। गाँववालों के कार्य की सारी जवाबदेही मैं अपनी समझता हूँ। उनके भाग्य के साथ ही मेरा भाग्य सदैव जुड़ा रहेगा।'

'आपको वे हरगिज़ नहीं छोड़ेंगे!' कई आदमी उनके सामने युक्ति देते रहे परंतु बाबा अपने निश्चय पर अटल रहे।

रविशंकर, अब भी ऊँचे कछार पर बैठे हैं। उनकी दृष्टि चिता पर है। उनके मन में बहुत बड़ा संघर्ष चल रहा है। उन्हें अपना सारा जीवन ही असार दीखता है। बाबा को अपने पास आते देखकर उन्होंने कहा – 'सबका यहीं अंत है ? फिर......'

'लहरों का अंत है परंतु गंगा की धारा का ?' बाबा ने उन्हें बीच में ही टोका—'वह धारा तो अपने लक्ष्य पर पहुँचकर ही रहती है। गंगा ने अपना लक्ष्य समुद्र से जा मिलना ही बनाया है। उनका रास्ता क्या सब जगह सीधा और सुगम है ? उनके रास्ते में क्या पहाड़ नहीं आ खड़े होते ? गड्ढे नहीं मिलते ? पर इन्हीं बाधाओं से क्या गंगा रुक जाती है ? नहीं तो ! देखो न, ये बाधाएँ जितनी ही प्रचंड बनती हैं गंगा उतनी ही प्रचंड गर्जना करके बाधाओं को ढकेलती हुई आगे बढ़ती है और अपने लक्ष्य पर पहुँचकर ही रहती है। तुम्हारे जीवन का रास्ता भी तो वे ही दिखा देती हैं !'

'पर हमारे भी जीवन का तो यहीं आकर अन्त होना है !' उन्होंने चिता की ओर संकेत किया।

'तुम्हारे द्वारा अर्जित ज्ञान और तुम्हारी साधना का अंत तुम्हें वध करके नहीं किया जा सकता। प्रकृति इसका हमेशा ही ख़याल रखती है कि आवश्यक चीज़ें नष्ट न होने पाएँ !'

'मेरा और रहा ही क्या ? सब कुछ तो इस तूफ़ान में उड़ गया !'

'गंगा किनारे के लोग तो ख़ुद ही तूफ़ान को निमंत्रण देते चलते हैं। मुसीबतों से वे न तो घबराते हैं न उसकी वे किसी के सामने फ़रियाद करने जाते हैं। बाधा और विपत्तियों के साथ लड़ने, मृत्यु का उपहास करने और उस पर जय प्राप्त करने में ही वे प्रसन्न होते हैं। 'मैं दुर्बल हूँ—मुझसे नहीं पार लगेगा'—जैसी बातें, वे कभी भी नहीं सोचते। बाधाओं के झोंके उन्हें गिरा देते हैं, लेकिन वे फिर उठकर खड़े होते हैं। उनके जीवन में हमेशा ही पुरानी चीज़ें मरती और नई जन्म लेती हैं !'

अंधकार घिरता आ रहा है। उसमें रविशंकर को आज अपना दुर्भाग्य ही विकराल रूप धारण किए, मानों उन्हें ग्रास करने के लिए आता दिखाई देता है। वे उसकी ओर देखकर सिहर उठते हैं। बाबा उधर उँगली दिखाकर कहते हैं—'तुम क्यों नहीं ललकार कर परिस्थिति से कहते—बड़ा-से-बड़ा दुर्भाग्य भी मेरा आनंद नष्ट नहीं कर सकता! जीवन की जटिलताओ! अरी कठोरताओ! तुम प्रबल-से-प्रबल प्रहार मुझ पर करो, परंतु तुम मुझे तोड़ नहीं सकतीं। घने अंधकार के मौक़े पर भी प्रकाश और वेदना से क्रन्दन करते समय भी आनंद और हँसी में मेरा विश्वास अटल रहेगा।'

रविशंकर धीरे-धीरे उस घिरते हुए अंधकार की दिशा में ही आगे बढ़े।

चिता जल रही है। उसके पास अब एक माझी उसकी राख विसर्जन करने के लिए खड़ा रह गया है। थोड़ी दूर पर कोलाहल भी सुनाई देने लगा है।

रविशंकर के चले जाने पर बाबा को कुछ याद आया। माझी के चेहरे पर उनकी दृष्टि गई। उन्होंने अपनी जेब टटोली। उन्होंने उसमें से काग़ज़ निकालकर चिता के प्रकाश में कुछ लिखा।

अब बूट जूतों की आवाज़ें स्पष्ट सुनाई देने लगीं। उन्होंने जल्दी-जल्दी चिता की राख गंगा में विसर्जन कर दी। गंगा-जल उलीचकर वह ज़मीन भी साफ़ कर दी गई।

थोड़ी देर पहले लिखा हुआ पुर्ज़ा बाबा ने माझी को दिया। उसे लेकर वह भी अंधकार की दिशा में दौड़ पड़ा।

अब उस कछार पर अकेले बाबा ही रह गए हैं। वे एकटक गंगा की ओर देख रहे हैं। सम्भवतः उनसे कुछ पूछना चाहते हैं। जिसे अभी विसर्जन किया था, उसी के बारे में!

जय माँ गंगे

'आओ ! आओ !'

तंद्रा में उन्हें फिर से वही झंकार सुनाई दे रही है। पर आज की आवाज़ भर्राई हुई है। शायद यंत्र के बहुत से तार टूट गए हैं।

'कहाँ ?' आँखें बंद किए ही उन्होंने पूछा।

'उस पार।'

उन्होंने करवट बदल ली।

'आओ ! चलो !'

'नहीं !'

'देर हो रही है।'

'होने दो।'

'फिर नाव नहीं मिलेगी !'

'न मिले !'

फिर से गाढ़ी तंद्रा ! 'आओ ! आओ !' की ध्वनि विलीन होती जा रही है।

'दीदी बुला गई हैं !' कहते हुए बिरुआ ने झकझोरकर रविशंकर को जगाया। दूर पर एक पीपल का पेड़ दिखाते हुए उसने कहा—'वह, वहाँ ! उस श्मशान के ऊपर डोंगी है।'

वे उठ खड़े हुए। चुपचाप। बिरुआ उन्हें खींच ले चला।

वे नाव पर सवार हो चुके हैं। अब माझियों के सिर्फ़ पतवार बाँध लेने भर की देर है।

मठिया की एक कुटिया से, ऊपर की ओर उठती हुई आग की लपटें उन्हें अभी दिखाई दे रही हैं। उन लपटों के नीचे, गंगा की धारा का रंग लाल हो उठा है।

किनारे पर, बच्चे को गोद में लिए सोनियाँ खड़ी है। वह सो रहा है। उसका सिर अपनी माँ की छाती से जैसा चिपका रहता था, वैसा ही, इस समय सोनियाँ की छाती से चिपका हुआ है। नाव की छत पर रखे दिए की रोशनी में, सोनियाँ किसी कुशल चित्रकार द्वारा चुनार के पत्थरों से तैयार की हुई आदर्श माँ की मूर्त्ति जैसी दिखाई देती है। बच्चे के चेहरे पर भी एक अद्भुत लाली है।

रविशंकर और सविता के साथ साथ कई माझियों की भी दृष्टि उसी ओर है। उसकी निद्रा भंग हो जाने के भय से ही, शायद कोई किसी से कुछ कहने का साहस नहीं कर रहा है।

नाव खोल दी गई। वह प्रस्तर-मूर्ति धुँधली पड़ने लगी। एक मुहूर्त्त-बाद, किनारे के कुहासे ने उसे भी अपने आवरण में छिपा लिया।

"संग्राम के बीच से ही तुम्हारा रास्ता है। बाधाएँ तुम्हें नष्ट नहीं कर सकतीं। मृत्यु को जय करने पर ही मनुष्यता प्रकाश पाती है। आशीष! बाबा—"

वे आँखें गड़ा-गड़ाकर पढ़ रहे हैं। हवा के एक झोंके ने नाव पर का दिया बुझा दिया। तट के पास रहने पर भी, कछार, बहुत दूर खिसक गया-सा दीखने लगा है।

वे नाव पर बैठे हैं। उनकी दृष्टि गंगा की ओर है। आकाश में

काले बादल सफ़ेद बादलों को खदेड़ते आ रहे हैं। माझियों ने नाव की रफ़्तार तेज़ करते हुए कहा—'जय माँ गंगे !'

वे थोड़ा ही आगे बढ़े होंगे। एक ओर से कोई चीज़ बहती आ रही है। गंगा उसे बड़ी सावधानी से अपने साथ समुद्र की ओर लिए जा रही हैं। शायद ही कोई माँ अपने बच्चे को वैसी सावधानी से अपनी गोद में उठा पाती होगी। इस माँ की गोद से उसके फिर कभी छिन जाने का भय नहीं है।

उस पर नज़र पड़ते ही, माझियों ने नाव दूसरी दिशा में मोड़ ली। उन्हें भी शायद माँ की गोद में सोते हुए बच्चे की याद आ गई है।

'हमें वहाँ जाना है !'

उन्हें कोई उत्तर नहीं मिला। सामने की गंगा क्षितिज से मिल गई हैं। उन्होंने अगल बगल दृष्टि दौड़ाई। नाव के चारों ओर की गंगा एक सी ही दीखती है।

फिर वही विचित्र ढंग की आवाज़ ! मालूम पड़ता है, उधर से कोई बुला रहा है ? उन्होंने डाँड़ चलाना बंद करने का इशारा किया। माझी ने कहा—'यह कुछ भी नहीं ! घटा गरज रही है।'

बिरुआ के हाथ में पतवार है। वह बड़ी देर से एकटक एक ही दिशा में देख रहा है। उसने कहा—

'नहीं, नहीं ! आज फिर गंगा मैया गरज रही हैं !'